श्रीयाज्ञवल्क्यमैत्रीसंवाद ।

वेदान्तविद् श्रीयुत रायबहादुर बाबू सालिगराम
पोस्टमास्टर-जनरल रियासत ग्वालियर ने
मुमुक्षु पुरुषों के हितार्थ अत्यन्त
परिश्रम से निर्माण किया.

प्रथम बार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी.आई.ई., के छापेखाने में छपा
सन् १९१३ ई०

भूमिका ।

—※—

हे प्रियपाठको ! इस भारत भूमि पर बड़े बड़े वि-द्वान् होगये हैं; और होते जांयगे, कुछ काल बीच में तमोगुण छा गया था, और उसके अंधियारी रात्रि विषे ब्रह्मविद्या महारानी, जो पूर्वकाल के महर्षियों के हृदय में उत्पन्न हुई थीं, सोती रहीं, अब इस अंगरेजी धर्म-युक्त राज्य में सुषुप्ति अवस्था से उठकर चारों ओर दीख रही हैं, और उनके चेहरे का प्रकाश सूर्य की तरह फैल रहा है, जिस करके इदानींकाल के विद्वान् अपने में ही अपने सच्चिदानन्द रूप को देख रहे हैं, और अपने ही चेतन स्वरूप को पाकर उन के रज तम से उत्पन्न हुये रागद्वेषऐसे तिरोभाव को प्राप्त भये हैं जैसे रवि के उदय होतेही नक्षत्रगण तिमिरता को प्राप्त होजाता है—

इस ग्रन्थरूपी सागर विषे षट्शास्त्रों की तरंगें अपनी अपनी अद्भुत शोभा दिखा रही हैं, जो मुमुक्षुजन इसके तट पर खड़े होकर उन लहरों के उमंग को यदि एक बार भी देखेंगे, तो वह अवश्य प्रसन्नचित्त होकर ऐसे सागर में प्रतिदिन स्नान करके आनन्द को प्राप्त होते रहेंगे, और शरीर त्यागने के पश्चात् आवागमन से रहित होकर परमधाम को सिधारेंगे—

ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

ओ३म्

याज्ञवल्क्यमैत्रीसंवाद ॥

एक सघन वन है, जिसमें हरे भरे वृक्ष जमे हैं, उन की शाखों पर रंग बरंग की छोटी २ चिड़ियें अपने सुरीले शब्दों से ईश्वर का गुणानुवाद प्रात और सायं-काल समय आनंदपूर्वक कररही हैं, श्रीमहारानी पवित्र पावनी कलिमलहरणी गंगाजी मंद २ गति से उसके बीच में होकर बह रही हैं. तिसके समीप एक सुहावनी कुटी वृक्षों की लता से ललित होरही है, मृगादि निडर होकर कुलेल कर रहे हैं, और थोड़ी दूर पर ऋषियों के पुत्र, पुत्री और शिष्यगण अपनी २ कुटियों में उच्च स्वर से अग्निपूजन (हवनादिक) कररहे हैं, यह स्थान सतगुण करके सुशोभित दिखाई दे रहा है; एक कुटी के अन्दर एक स्त्री और एक पुरुष विराजमान हैं, स्त्री के चन्द्रमुखी चिहरे से मालूम होताहै कि वह सतोगुण की अवतारहै, और सारा शरीर शुद्ध सत्वगुण का बनाहुआ है, शान्ति मुखारविन्द पर छा रही है, पुरुषभी अपने रंग रूप में अद्वितिय है, सूर्यकीसी कान्ति मुँह पर झलक रही है, सत्‌चित् आनंद जो ब्रह्मका स्वरूप है सारे चिहरे पर विराजमान है, तपोबल का प्रकाश दमक रहा है,

दोनों एक मृगचर्म कुशासंयुक्त आसन पर बैठकर नित्य कर्म संध्या आदि करके बाहर चले आ रहे हैं, कुछ थोड़ी रात्रि होगई है, सूनसान चारों तरफ़ छागया है, चाँदनी अपनी चमक दिखा रही है, किरणें चारों तरफ़ बिखर गई हैं, मन्द २ सुगंध पवन चल रही है, आनन्द की वर्षा हो रही है, ये दोनों स्त्री और पुरुष अपने चित्त में अखंड ब्रह्माकार वृत्ति को धारण किये हुए चुपचाप चले जा रहे हैं, कुछ दूर जाकर एक स्फटिकशिला पर गंगा के निकट बैठ गये, और चन्द्रकिरण जो शुद्ध जल के तरंगों में पड़कर एक अलौकिक लीला दिखा रही थी उसकी ओर देखने लगे.

हे पाठकजनो ! आपको इतनी दूर लाकर अनाम को नाम से संयुक्त करके बताता हूं कि ये महात्मा याज्ञवल्क्य और उनकी लघुपत्नी श्रीमती मैत्री देवी हैं, उनके परस्पर में जो संवाद उस समय हुआ है नीचे लिखता हूं.

मैत्री–हे प्राणनाथ ! यह जगत् क्या है और कैसा प्रतीत होता है.

याज्ञवल्क्य–हे प्रिये ! यह जगत् सत् असत् से विलक्षण आश्चर्यवत् दिखाई देता है, किसी ज्ञानी को तो यह संसार ब्रह्मरूप दीखता है, क्योंकि यह सत् परमात्मा अधिष्ठान के आश्रय है, आश्रित वस्तु अधिष्ठान से पृथक् कोई सत्ता नहीं रखती है, वह अधिष्ठानरूपही प्रतीत

होती है, जैसे कपड़ा सूत के आश्रय होने से सूतरूपही है, सूत से अलग करके देखा जावे तो कपड़े का कहीं पता नहीं, इसी तरह से ब्रह्मसत्ता से संसार अलग करके देखा जाय तो इसका भी कहीं पता नहीं, जब ऐसा यह ब्रह्मरूप संसार है तो यह आनन्दरूप है, तुम इस समय कैसे आनन्द को प्राप्त हो, चन्द्रमा अपनी किरणों से तप्त भूमि को शीतल कर रहा है, उसका प्रकाश हृदयके तमोगुणको दबाकरके हमारेतुम्हारे अन्तःकरण-विशिष्ट चैतन्य को प्रफुल्लित कररहा है, शुद्ध गंगाजल की लहरों के साथ चंद्रप्रतिबिंब ऐसा मालूम होता है कि मानो ब्रह्म चैतन्य से अनेक जीव चेतन निकले चले आरहे हैं, ऊपर दृष्टि उठाकर देखो तो तारेगणों का छत्र लगा है मानों किसी ने धान के लावे ऊपर को फेंक दिये हैं, और वे आकाश में अनाश्रित खड़े हैं, रात्रि ऐसी सूनसान प्रतीत होती है कि मानों इसने शान्ति-रस धारण करके अपनी निर्विकल्प समाधिमें स्थितहै, तुम द्रष्टा होकर अलौकिक दृश्य को देख रही हो, अब बताओ कि क्या तुम्हारा मन भ्रमर होकर इस दृश्य के अधिष्ठान चेतन ब्रह्ममें नहीं लग रहाहै, हे चन्द्रवदनी! ऐसी आनन्दकन्द की वृत्ति का कारण पवनरहित शुद्ध जल है, क्योंकि शुद्ध और शान्त होने के कारण इस जल में हर तरफ़ चन्द्र का प्रतिबिंब दिखाई दे रहा है, और उसको देखकर हृदय आनन्दित होजाताहै, तुमको

याद होगा कि एकवार वर्षाकाल में भी हम तुम दोनों यहां आये थे, और इसी स्थान पर बैठे थे, पर उस समय में यह आनन्द नहीं मिला था, कारण इसका यह है कि वर्षाऋतु में जल मिट्टी कूड़ा आदि से मिलकर मैला होजाता है, उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता है, जब वर्षाकाल व्यतीत होजाती है, और शरदृऋतु आती है तब पानी से मिला हुआ गर्द गुबार नीचे बैठ जाता है, और जल निर्मल होजाता है, और वायुकी गति मन्द होजाती है, तब चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब यथार्थ दिखाई देने लगता है, हे मैत्री ! इसीप्रकार पुरुष के अन्तःकरणरूपी नदी जबतक मल विक्षेप और आवरणरूपी गर्द गुबार से भरी है तबतक उसमें अपने अधिष्ठान चेतनरूपी चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई देता है, मगर जब अन्तःकरण शुद्ध और विषय-वासना वृत्तिकी निवृत्ति होजाती है तब वह अपने स्वरूप को यथार्थ देखने लगता है, यदि पुरुष चाहे कि मैं अपने यथार्थ स्वरूप चेतन को अपने में देखूं तो उसको चाहिये कि वेदविहित निष्काम कर्म करके वह अपने अन्तःकरण को शुद्ध करै, और फिर अपने इष्ट देवकी उपासना करके अपनी वृत्तियों को शान्त करै, अर्थात् उठने न देवै, क्योंकि जैसे शुद्ध जल विषे जो सूर्य या चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह वायु के वेग से जल में हलचल किया करता है, और इसी कारण वह प्रति-

विम्ब कटाकुटासा प्रतीत होताहै ठीक ठीक जैसा है वैसा नहीं दिखाई देता है, इसी तरह से जबतक शुद्धाशुद्ध कामनाकी वृत्ति की शान्ति नहीं होती है तबतक यथार्थ स्वरूप अपने चेतन आत्मा का हृदयरूपी जल में नहीं दिखाई देताहै, छिन्न परिच्छिन्न सा दिखाई पड़ताहै, परन्तु जब चित्त शुद्ध होकर वासनारहित होताहै तब चेतन का प्रतिविम्ब उसमें दिखाई देने लगता है, और वह पुरुष अपने अलौकिक रूप को अपने में देखकर और आश्चर्य को प्राप्त होकर आनन्द के समुद्र में मग्न होजाता है, और फिर जब श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का दर्शन होता है, और वह उपदेश करता है कि जो तू अपने में अकथनिय चेतन ब्रह्म का स्वरूप चन्द्रविम्बवत् देखता है सो तूही है, और यही तेरा स्वरूप सच्चिदानन्द है, यही तेरा रूप बाहर भीतर सब में दिखाई देता है, तेरे से इतर और कोई वस्तु नहीं है, जिस समय पुरुष को ऐसा बोध होता है, उसका चिहरा खिल उठता है, क्योंकि वह अ-खंड आत्मसुख को अपने मेंही प्राप्त होता है, हे मैत्री! अब कहो क्या तुम मेरे उपदेश करके अपने वास्तविक रूप को प्राप्त होकरके आनन्द को प्राप्त हो या नहीं, और क्या तुम को संसार ब्रह्मस्वरूप नहीं दिखाई देता है, हे मैत्री! ऐसा जो सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् पर-मात्मा है, वही तुम्हारे मेरे और सब जीवों के शरीरों में स्थित होकर विलास कर रहा है, वही अपने भक्तों के

आनंद के लिये अनेक रूप को धारण करता है, कहीं वह स्त्री के शरीर में होकर स्त्रीरूप से प्रकट है, कहीं मनुष्य, कहीं हाथी, कहीं घोड़े, कहीं शेर, कहीं बिल्ली होकर आनन्द कररहा है, जैसे २ जीवों के आकार होते हैं, वैसे २ वह प्रतीत होता है, जैसे गला हुआ रांग घोड़े के आकार के सांचे में डालने से घोड़ासा, हाथी के आकार के सांचे में डालने से हाथीसा, मनुष्य के आकार के सांचे में डालने से मनुष्य सा प्रतीत होता है, परन्तु आकार से अलग करके देखो तो रांग ज्यों का त्यों एक रूप से स्थित है, जो वास्तविक रूप रांगे का सांचे में पड़ने के पहिले था वही सांचे में पड़ने के पीछे भी रहा, इसी प्रकार चैतन्य आत्मा सब शरीरों में स्थित होता हुआ और उनके स्वभाव आदि धर्मों से युक्त होता हुआ भी ज्यों का त्यों एकरस स्थित रहताहै, और अपने स्वरूप से कभी च्युत नहीं होता है, जैसे कोई चतुर पुरुष अपने मित्रगणों के आह्लाद के निमित्त स्त्री के रूप का स्वांग रचता है, और हाव भाव कटाक्ष दिखाकर उन को खुश करता है, मगर अपने स्वरूप को भूलता नहीं है, उसको ज्ञान बना रहता है कि मैं पुरुष हूं, स्त्री नहीं हूं, और न स्त्री का कोई धर्म मेरे विषे है, और इस कारण उसको कोई खेद भी नहीं होताहै, मित्रगण जो उस के समीप में रहते हैं, और उसके यथार्थ रूप को जानते हैं, वह उसके स्त्रीरूप को देखकर मोह को नहीं प्राप्त होते

हैं, किन्तु आनन्द को प्राप्त होते हैं, और उसके स्त्री बनने की कारीगरी (स्वाँग) की प्रशंसा करते हैं, मगर जो अज्ञानी पुरुष उसके यथार्थ स्वरूप को नहीं जानते हैं, और उससे दूर हैं, वे कामना के वश होकर मन के अनेक संकल्प विकल्प करके दुःख उठाते हैं, इसी प्रकार हे प्रिये, मैत्री! परमात्मा ब्रह्म सच्चिदानन्द निर्विकार असामान्य कार्य्यनिमित्त और भक्तों के आनन्दार्थ और धर्मस्थापनार्थ अपने वास्तविक समष्टि सामान्य रूप से उतर कर विशेष व्यष्टि रूप को धारण करता है, और रामकृष्णादिअवतारों के नामसे विदित होता है, उनके यथार्थ रूप को वही जानते हैं जो उनके मित्र हैं, अर्थात् उनके भक्त हैं, और उनके समीप बैठनेवाले हैं, यानी उनके सगुण रूप को अपने चित्त में स्थित करके अहर्निश दिव्य दृष्टि से देखते रहते हैं, और जो अहंकारी मान मद से भरे हुए हैं जैसे रावण दुर्योधन आदि वे उनकी समर्थ और शक्ति को न जानकर उनकी निन्दा करते हैं, पर हे मैत्री! वह परमात्मा उनकी निन्दा को सुनते हुए और उनके तुच्छ कौतुकों पर हँसते हुए उन के चित्त में वसने के कारण (क्योंकि वे उनको सदा वैरभाव से चिंतन करते रहते हैं) उनको अन्तसमय में सुगति को प्राप्त करके मोक्ष करदेताहै, हे मैत्री! जब दुष्ट पुरुषों का परमात्मा कल्याण करता है तब जो उसके भक्त हैं, और उसमें रमण किया करते हैं, और उसके

गुणानुवाद को श्रवण करते हैं तो वे यदि जीतेहीजी ब्रह्मरूप होजावें (ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति) और शरीर पात होनेपर आवागमन से रहित होकर ब्रह्म में इस तरह से लीन होजावै, जैसे पानी में पानी, अग्नि में अग्नि तो इसमें असम्भव क्या है.

हे मैत्री! देखो मैं तुमको उदाहरण देकर समझाता हूं, ध्यान देकर सुनो, अगर एक टुकड़ा लोहे का लेकर विचार के साथ देखो तो तुमको मालूम होगा कि वह आकाश तत्त्व से पूर्ण है, यानी उसके ऊपर नीचे वाहर भीतर आकाश व्याप्त है, आकाश वह है जो और वस्तुओं को आने की जगह दे, अगर इस लोहे के टुकड़े को अग्नि में डालदिया जाय तो अग्नि का गुण उष्णता और लाल रंग उसमें समाय जायगा, अगर लोहे में आकाशतत्त्व न होता तो अग्नि की उष्णता और अरुणता उसमें प्रवेश न करती, अगर इस लोहे के टुकड़े को एक हज़ार टुकड़े करडालो या असंख्य अति सूक्ष्म टुकड़े कर डालो तो भी हरएक टुकड़े में आकाश अवश्य व्याप्त हो कर रहेगा, क्योंकि आकाश अति सूक्ष्म है, और इसी कारण से व्यापक है और यही आकाश आत्मा का शरीर कहा गया है, आत्मा अधिष्ठान होने से और शरीर अध्यस्थ होनेसे एक दूसरे से पृथक् नहीं, जो कुछ चैतन्य आत्मा अधिष्ठान में अध्यस्थ है वह दृश है, और दृश पंचतत्त्वों से बना है, और पांचों तत्त्व कार्य कारण करके

स्थित हैं, और कार्य कारण से अलग रह नहीं सक्ता है, यह नियमहै, इसलिये जब कार्यका लय होगा तो अपने कारण में ही लय होगा, पृथ्वी का कारण जल है, पृथ्वी जब लय होगी तो अपने कारण जल में लय होकर जल-रूप ही होजायगी, इसी प्रकार जल अग्नि में लय होकर अग्निरूप होजायगा, अग्नि वायु में लय होकर वायु-रूप होजायगा, और वायु आकाश में लय होकरके आकाशरूप होजायगा, और आकाश चैतन्य में लय होकर चैतन्य रूप होजायगा, क्योंकि पृथ्वी का कारण जल, और जल का कारण अग्नि, और अग्नि का कारण वायु, और वायु का कारण आकाश, और आकाश का कारण चैतन्य आत्मा ब्रह्म है, और चूंकि अध्यस्थ अधि-ष्ठान से पृथक् नहीं रहता है, इसलिये हम तुम यावत् शरीरधारी अध्यस्थहैं सब ब्रह्मरूपही हैं,जिस परमात्मा की सत्ता करके यह शरीर स्थित है, और जो शरीर के अन्दर व्यापक है, उसी का ध्यान और अनुभव करना चाहिये, यह शरीर पंचतत्त्वों से कार्य कारण करके बना है, यह काल पाकर प्रारब्ध कर्म भोगने के लिये उत्पन्न होता है, और जब प्रारब्ध कर्म की समाप्ति होजाती है तब यह शरीर नष्ट होजाता है.

हे मैत्री ! अगर तुम भली प्रकार विचार करके दे-खोगी तो चैतन्य आत्मा जो जीवभाव से इस शरीर में स्थित है वह तीनों शरीरों (स्थूल-सूक्ष्म-कारण)

से पृथक् है, जब कोई पुरुष ऐसा अनुभव करता है कि ज़व मैं युवा था तव मैं मोटा था, गोरा चिट्टा था, अव वुड्ढा होनेसे विलकुल दुवला, और साँवला होगया हूं, अव जिस शक्तिकरके वह पुरुष अपने मोटे,दुवले, गोरे, चिट्टे, और साँवले शरीर का अनुभव करता है वह अनुभव करनेवाली शक्ति अनुभव की हुई वस्तु, और शरीर से पृथक् है, इस न्यायप्रमाण से कि (घटा द्रष्टा घटाद्भिन्नः) घट का देखनेवाला घट से अलग रहता है, इस लिये यह सवूत करता है कि चैतन्य आत्मा जो शरीर के अन्दर है वह स्थूल शरीर से पृथक् है क्योंकि शरीर का द्रष्टाहै, हे मैत्री! पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच प्राण, मन, वुद्धि, चित्त, अहंकार इन के समुदाय को सूक्ष्म शरीर कहते हैं, इस सूक्ष्म शरीर से भी चैतन्य आत्मा पृथक् है, जव कोई पुरुष कहता है कि मैं आँखों करके पहले अच्छी तरह से देखता था अव नहीं देख सक्ता, मेरी आँखें शक्तिहीन होगई, अव मेरे प्राण चलते २ थक जाते हैं, मेरी यावत् इन्द्रियां हैं, सव कमज़ोर होगई हैं, अव जिस शक्ति करके अपने लिंग शरीर के कमज़ोर और अच्छे होने का अनुभव करता है वह शक्ति अनुभव की हुई वस्तु यानी लिंग शरीर से ऊपर लिखे हुए न्यायप्रमाण करके पृथक् है,– मूलाज्ञान, या मूल प्रकृति, या माया कारणशरीर है, क्योंकि इसके कार्य सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर हैं,

यह अतिसूक्ष्मरूप से चैतन्य आत्मा में लय रहती है, और परमात्मा के इच्छामात्र से शब्द स्पर्श रूप रस गंध आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी होकर सृष्टि को रचती है,—जब कोई पुरुष सोकरके उठता है, और उस का मित्र पूछता है कि कहो भाई रात्रि कैसी कटी तो जवाब देता है कि ऐसे आनंद से सोया कि खबर तक न रही, यह साबित करता है कि पुरुष सुषुप्तिअवस्था में एक तो आनंद को अनुभव किया और दूसरे बेख़बरी को, और उठ करके जो यह कहा कि मैं ऐसा आनंद से सोया कि ख़बर न रही यह स्मृतिज्ञान है, और स्मृति ज्ञान अनुभव की हुई या देखी हुई वस्तु की होती है, जिस शक्ति करके पुरुष ने सुषुप्ति में ऐसा अनुभव किया कि ऐसा सोया कि खबर न रही वह शक्ति अनुभव कीहुई वस्तु आनन्द और अज्ञानता यानी कारणशरीर से पृथक् है, ऐसी यह शक्ति मैं था अहं है यह तीनों शरीरों में चैतन्य आत्मा एकरस सदा ज्यों का त्यों बना रहता है, मैं बालक था, मैं जवान था, मैं बुड्ढा हूं, मैं जागता था, मैं स्वप्न देखता था, मैं स्थित हूं, मैं चला जाऊंगा, जो मैं कि बालक में था वही मैं जवानी में था वही मैं बुढ़ापा में हूं, वही मैं अब स्थितहूं, वही मैं चला जाऊँगा, हे मैत्री! यही तुम्हारा रूपहै,—तुम इस शरीर से पृथक् स्थित हो, इस शरीर के नाश होने से तुम्हारा नाश नहीं है, न कभी तुम पैदा हुई हो,

न कभी तुम मरोगी, और अविनाशी होने के कारण तुम अभय हो, और तुम्हाराही रूप सबमें होनेसे वे सब भी तुमसे भयरहित हैं, जो अभय होता है, वह शोकरहित होता है, और जो शोकरहित होताहै वह आनन्दस्वरूप होता है, और जो आनन्दस्वरूप होताहै, वही ब्रह्म है, इसलिये तुम ब्रह्मरूप हो, और ऐसेही मैं भी ब्रह्मस्वरूप हूं, और इतर जीव भी ब्रह्मरूपही हैं, केवल इतना भेद है कि हम तुम ज्ञानकरके अपने वास्तविक रूपको जानते हैं, और वे अज्ञान करके अपने वास्तविक रूप को नहीं जानते हैं.

हे मैत्री ! ज्ञान का साधन विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति, और मुमुक्षुता है, और यह वृत्तियां उस वक्त उदय होती हैं जब सतोगुण वृद्धि को प्राप्त होता है, और रजोगुण और तमोगुण लय रहते हैं, दुःख का कारण रजोगुण और तमोगुण हैं, रजोगुण का परिणाम कामना है, कामना अनेक प्रकार की होती है, परन्तु तीन कामना अति प्रबल हैं, स्त्री की कामना, धन की कामना, और पृथिवी की कामना,—जब किसी पुरुष को स्त्री की कामना उठती है तो वह अनेक प्रकार के उपद्रव करने लगता है, प्रतिष्ठा, धन, धर्म्म, सब खो बैठता है, और काम के बाण से घायल होकर अति दुःखी होताहै, क्योंकि उसके मन की वृत्ति में ऐसा हलचल पड़ जाता है जैसे पवन के झकोर से नदी का जल उथल पुथल जाता है,

वह पुरुष जीतेजी घोर नरक के दुःखों को प्राप्त होजाता है,-जो पुरुष धन की कामना से ग्रसित है, वह उसके संचित करने में अहर्निश बावलासा फिरा करता है, न उसको खाने पीनेकी फिकर,न सोने बैठने का ख्यालहै, असंख्य वृत्तियां उसके अन्तःकरण को हलचल कर रहती हैं, और अगर दैवयोग से धन नष्ट होगया तो जीतेजी मृत्यु के कष्ट को प्राप्त होजाता है, जिस पुरुष को पृथ्वी की कामना होती है वह संग्राम में जाकर कुटुम्ब सहित अपने को नाश करा डालता है. जैसे दुर्योधन आदि ने किया - जब तमोगुण प्रबल होता है तब क्रोध से पुरुष भरजाता है, नेत्र उसके देखने में असमर्थ होजाते हैं, चारों ओर अँधेरा छा जाता है, और प्राण-घातक कर्म कर बैठता है, कौन उसके दुःख की सीमा को वर्णन करसक्राहै; हे मैत्री ! यह रजोगुण और तमो-गुण की प्रबल्यता है, इनके वश में होकर पुरुष को सुख कहां ? तुम आज जो आनन्द को प्राप्त हो इसका कारण यह है कि तुमने अनेक जन्मों से पुरुषार्थ करके रज तम को इतना दबाया कि उनके अंकुर की वृद्धि जाती रही और उनके लय होने के कारण सतोगुण प्रफुल्लित होआया, तुम्हारे विषे जो यह शान्ति दिखाई दे रही है वह सतोगुण का परिणाम है, तुम विषयवासना से रहित हो, और निर्वाणपदवी को प्राप्त हो, हे मैत्री ! जब पुरुष सतोगुणी व्यवहार करता है, सतोगुणी भोजन

करता है, सात्त्विक दान देता है और सात्त्विक कर्म करता है, और निरन्तर सत्य बोला करता है, तब उसका अन्तःकरण शुद्ध होजाता है, और ज्ञान उत्पन्न होता है, और ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य के उपदेश करके वह वास्तविक रूप को प्राप्त हो कर शान्त होजाता है, यही जीवन्मुक्ति का लक्षण है.

हे मैत्री ! जो अवतारादिक होते हैं, वह वेदविहित कर्मों को उल्लंघन करके वर्त्तते हैं, उनको कोई कर्म लिप्यमान नहीं होता है, यानी वह कर्म के बंधन में नहीं आते हैं, उनको माया नहीं सताती है, उलटी माया उनको हाथ जोड़ती है, क्योंकि माया उनके आधीन है, जैसा वे चाहते हैं, वैसाही माया करनेलगती है—जब कृष्ण पांच वर्ष के थे तब अपने सखों के सामने बहुतसी सुइयां एक दूसरे के बाद गाड़ देते थे और हाथियों से जो कि सुइयों के पीछे खड़े रहते थे उनसे कहते थे कि इन सुइयों के नाकों में से निकल जाओ और वे सब सूक्ष्म होकर झटझट निकल जाते थे, इस कौतुक को देखकर सब हर्ष को प्राप्त होते थे, एकबार ब्रह्माजी गौ और गोपालों को लेकर बड़ी दूर किसी खोह में चले गये—ऐसा समझ करके कि अगर कृष्ण केवल मनुष्यपुत्र है तो गौ और गोपालों को न पाकर रुदन करेगा; और बग़ैर उनके गोकुल को कैसे जायगा, ब्रह्मा की अज्ञानता को देखकर कृष्ण मनही

मन में बहुत हँसे, और माया ने उनकी इच्छा को जान कर वैसेही और उतनेही गौ गोपाल रच दिये और कृष्ण सब के साथ गोकुल को सायंकाल चलदिये, यह कौतुक देखकर ब्रह्मा आश्चर्य को प्राप्त हुआ, और मनही मन में प्रणाम करके ब्रह्मलोक को चलागया, हे मैत्री ! जितने अवतार होते हैं, वह ब्रह्मरूपही होते हैं, और माया ब्रह्म के आश्रित होने से उनके इच्छानुसार सब कार्य करती है, जैसे राजा के नौकर राजा के इच्छानुसार ही सब काम करते हैं, हे मैत्री ! जब माया यह देखती है कि परमात्मा कहीं अवतार लेना चाहता है, तो पेश्तर उसके उतरनेके ऐसा सुन्दर अद्वितीय शरीर बना रखती है कि आतेही उसमें अलौकिक अनिर्वचनिय सामर्थ्यता दिखाई देनेलगती है, और उस देशभर में चारोंतरफ हर्ष की सामग्री दृष्टि आने लगती है, हे मैत्री ! जीवन्मुक्त पुरुष वही है जो योगवल करके ऐसा शक्तिमान् होजाय जैसा कि ईश्वर है.

मैत्री–हे प्रभो ! आपने संसार को ब्रह्मरूप बताया–पर ब्रह्म तो निराकार है और संसार साकार है निराकार साकार कैसे हो सक्ता है.

याज्ञवल्क्य–हे प्रिये, मैत्री ! जैसे ब्रह्म अनादि है वैसे माया भी अनादि है, किसी ऋषि, मुनि, देव, दैत्यको आजतक पता नहीं लगा कि माया कबसे है, जब महा-प्रलय होता है यानी यह दृश्यमान संसार नहीं रहताहै

तव वे तत्त्व जिन करके यह संसार दिखाई दे रहाहै परमाणुरूप से ब्रह्मविषे स्थित रहते हैं, और जीव भी लय रहते हैं, फिर जब जीवों के अदृष्ट फल देने को सन्मुख होता है, तव ब्रह्म में यह इच्छा होती है कि मैं सृष्टि को रचूं और एक से अनेक जीव होकरके विचरूं, ऐसी इच्छा होते ही सृष्टि इस प्रकार उत्पन्न होती है, पहले ब्रह्म से तीन गुण, रज, तम, सत् निकलते हैं, इनकी साम्य अवस्था को प्रकृति कहते हैं, प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), पंचतन्मात्रा से पंचमहाभूत, (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) फिर अहंकार से पांच कर्मेन्द्रिय हाथ, पांव, लिंग, गुदा, वाणी पांच ज्ञानेन्द्रिय (आंख, कान, नाक, त्वक्, जिह्वा), मन, वुद्धि, चित्त, अहंकार; और पांच प्राण (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान,) इन सव के समुदाय से व्यक्तमान सृष्टि उत्पन्न है, परन्तु जड़रूप है, किसी कार्य्य के करने में असमर्थ है, परन्तु जव परमात्मा सच्चिदानन्द इन विषे सामान्यरूप से उतर कर विशेषरूप को धारण करता है, तव वे उसकी शक्ति से शक्तिमान् होकर कार्य के करने में समर्थ होजाते हैं.

हे मैत्री! जव तत्त्व तमोगुण प्रधान होते हैं, यानी सत्, रज बहुत कम और तम बहुत ज़्यादा तव पहाड़ पत्थर वृक्ष आदि की सृष्टि रहती है, जव रज और तम

अधिक होताहै, और सत न्यून होताहै, तब कीड़े मकोड़े घोड़े हाथी बैल गधा पशु पक्षी आदि जीव होते हैं, और जब सत बढ़ने लगता है, तब मनुष्य की सृष्टि होती है, और जब सत प्रधान होता है, और रजोगुण तमोगुण न्यून होते हैं, तब देवताओं की सृष्टि होती है; हे मैत्री ! न्यूनाधिक नीच ऊंच अवस्था प्रकृति की होती है, आत्मा की नहीं, आत्मा सामान्यरूप से व्यापक होकरके सारे ब्रह्मांड भर में स्थित है, जिस शरीर में तमोगुण प्रधान है, उसमें आत्मा होते हुए भी न होने के बराबर प्रतीत होता है, और जिस शरीर में रजोगुण प्रधान है, उसमें आत्मा तमोगुण प्रधान शरीर की अपेक्षा विशेष प्रतीत होता है, और जिस शरीर में सतोगुण प्रधान होता है उसमें आत्मा बहुत विशेष अंश को प्राप्त होकर भासता है. हे मैत्री ! वृक्ष आदि तमोगुण प्रधान हैं, इसी कारण आत्मा भी इसमें सामान्यरूप से स्थित है, और इसी हेतु करके वृक्ष आदि पूजनीय नहीं हैं, बैल गाय घोड़ा हाथी पशु पक्षी आदि के शरीर रजोगुण प्रधान हैं, इन में आत्मा कुछ कुछ विशेष अंश करके प्रतीत होता है, क्योंकि तमोगुण की अपेक्षा रजोगुण अधिक शुद्ध है, मनुष्यों में शूद्र के शरीर विषे रज, तम दोनों प्रधान हैं, इस कारण शूद्र वृक्षादि से श्रेष्ठ हैं, वैश्य का शरीर रजोगुण प्रधान है, इस कारण उसमें आत्मा विशेष अंश करके शूद्र की अपेक्षा प्रतीत होता है, इसी हेतु से

वैश्य शूद्र की अपेक्षा श्रेष्ठ है, क्षत्रिय के शरीर में आत्मा और भी विशेष अंश के साथ प्रतीत होता है, और यही हेतु करके क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दोनों से श्रेष्ठ है; ब्राह्मण का शरीर सतोगुण प्रधान है, इसी कारण इसमें आत्मा पूरे विशेष अंश से प्रतीत होता है, और इसी हेतु से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तीनों से श्रेष्ठ है, और ब्राह्मणों में जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य हैं यानी जिन्हों ने वेदविहित कर्म करके अपने अंतःकरण को शुद्ध किया है, और उपासना करके मन के संकल्प विकल्प वृत्तियों को शान्त किया है, और वेदान्त के ग्रंथों को अध्ययन करके ज्ञान को प्राप्त हुए हैं, और सतगुरू के उपदेश करके अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हुए हैं, उनके अन्तःकरण में आत्मा हस्तामलकवत् प्रतीत होता है, और इसी हेतु करके यह आचार्य सब से श्रेष्ठ समझे जाते हैं, और इनकी पदवी ब्रह्म के तुल्य होती है, इनके पूजने से वही फल होता है जो ब्रह्म के पूजने से होता है; हे मैत्री! अगर मिट्टी के घड़े में दीपक या मोमबत्ती जलाकर रख दो तो उसका प्रकाश बाहर नहीं दिखाई देताहै, कारण यह है कि मिट्टी तमोगुण प्रधान है, परन्तु मिट्टी को क्रम से जब लैम्प या फ़ानूस बनाया जाता है, और उसके अंदर जब जलाहुआ दीपक या मोमबत्ती रख दीजाती है, तब उसका प्रकाश बाहर अपने असली प्रकाश से

भी ज़्यादा दिखलाई देता है, कारण यह है कि मिट्टी तमोगुण से सतोगुण को प्राप्त होकर लैम्प की सूरत को ग्रहण किया है; हे मैत्री! जिन जिन शरीरों में अन्तःकरण जितना २ शुद्ध है उतनाही वह श्रेष्ठ माननीय व पूजनीय होता है, हे मैत्री! तुम्हारा अन्तःकरण ऐसा ही शुद्ध है जैसे शरदृऋतु में नदी का जल शुद्ध होता है, और इसी कारण तुम्हारे विषे आत्मा चंद्रबिम्बवत् झलक रहा है, और इसी हेतु करके तुम भी श्रेष्ठ और पूजनीय हो.

हे मैत्री! शक्तिमान् अधिष्ठान होनेके कारण अध्यस्थ भी शक्तिमान् होताहै, चैतन्य आत्मा शक्तिमान् है, इस लिये माया जो उसके आश्रित है वह भी शक्तिमान् है, दोनों मिलकर अँधाधुंध मचा रक्खा है, माया भोग देने से हटती नहीं, और चैतन्य पुरुष भोगने से हटता नहीं; माया स्त्री होकरके भोग्य है, और चैतन्य आत्मा पुरुष होकरके उसका भोक्ता है, जैसे समुद्र की लहरें कुलेल करती हैं, वैसे स्त्री पुरुष परस्पर क्रीड़ा कर रहे हैं; द्रष्टा दृश्य का तमाशा होरहा है, बाहर निकल कर देखो तो हज़ारों कोस तक अन्नही अन्न, फलही फल घासही घास दिखाई दे रहा है, और मालूम होता है कि पृथ्वी उनके भार से नीचे को धसी जा रही है, पर थोड़े दिनों में जीवरूप ब्रह्म सबको भक्षण कर डालता है, और उनका पता नहीं लगता है, और फिर थोड़ेही दिनों में

माया ज्यों का त्यों चारों ओर हरा भरा कर देती है, जिधर देखो उधर माया की धूम धाम है. हे मैत्री! माया परमात्मा से यों कहती है कि हे प्रभो! यद्यपि मैं आप की अनुचरी और आपके आश्रय हूं और आपसे कोई अपनी पृथक् सत्ता नहीं रखती हूं, तो भी आपकी शक्ति लेकर अपने रंग रूप में और कार्य के उत्पन्न करने में अद्वितिय और अनिर्वचनिय हूं, और जो कुछ करती हूं आपके भोगार्थ और हर्षार्थ करती हूं, भला आप शयन शय्या से उठकर आंख खोल कर ऊपरको देखिये कैसे नक्षत्रगणों का छत्र लगा है मानों आकाश में मुक्ताफल (मोती) अपनी लड़ियोंसे विखर गये हैं, दक्षिण ओर समुद्रकी तरफ़ देखिये तो जलकाआदि अंत नहींहै, लहरें उसमें ऐसी छलांग मार रहीं हैं व मानों सूर्य्य चन्द्रादिक देवतों के चरण छूने की अभिलाषा कर रही हैं, उत्तरा-खंडकी तरफ़ जो देखिये तो पहाड़ोंके पहाड़ ऊपरको उठे चले जा रहे हैं मानों ग्रहादिकों के रथादिक के रोकनेका पुरुषार्थ कररहे हैं, क्योंकि उनकी भोगसामग्री अहंकार युक्तपर्वतोंको क्लेश दे रही हैं, पूर्वकी ओर देखिये तो प्रातः कालसूर्य्य ऐसा प्रिय और हर्षका देनेवाला (वर्षाऋतु में खास करके) निकलताहै कि मानो कुन्दइन्दु सम देह धारण कियेहुए शिव उमासहित कनक रथपर सवारहुए कैलाससे वैकुंठको गगनमार्ग होकर चलनेको तैयार हैं, और ज्ञान नेत्रोंकरके भूमंडलके तमको हटा रहेहैं, और

पश्चिमदिशा को देखिये तो गोधूलीसमय ऐसी सुहावनी प्रतीत होती है कि मानों ऋषिपत्नी कनकमुखी पातिव्रत धारण किये हुए अरण्य के किनारे पर खड़ी होकर तपोबल के प्रकाश से पृथ्वी को प्रकाश कर रही है और रात्रि के आवरणपट्ट (परदे) के गिरने से अपनी कुटियों को ऐसी लौटी जाती हैं मानों दामिनी घन विषे दमक कर तिरोभाव होजाती है, या सूर्य भगवान् के शुभागमन में पश्चिम के देवतालोग हर्ष में आनकर उनके अतिथिसत्कारनिमित्त करोड़ों दीपमालिका को प्रकाश करदिया है और जब सूर्यदेव अर्घ आदिक लेकर आगे को गमन करते हैं तो अन्धतम ऐसा छा जाता है कि मानों सब देवता समाधि विषे लयभाव को प्राप्त होगये हैं और नीचे की तरफ़ देखिये तो पृथ्वी भूतगण आदिकों से ऐसी सुशोभित होरही है कि मानों सुशीला स्त्री अनेक प्रकार के भूषणों से भूषित होती हुई और लड़कों वालों से तृप्त होती हुई हरे रंग के मखमली पट धारण किये हुए अपने प्राणपति के ध्यान में मग्न होरही है.

माया कहती है—हे स्वामिन्! यह मेरी सृष्टि आपके प्रसाद से मुझ करके रचीहुई अकथनीयहै—और देवता, दानव, मनुष्य आदि कोई इसके जानने को आजतक सामर्थ्यवान् नहीं हुए हैं, मैं पलक भर में नीचको ऊंच और ऊंच को नीच, पहाड़ को छार और छारको पहाड़ बनासक्ती हूं, और यह समर्थ मुझको आपके बलकी है.

हे मैत्री! परमात्मा बड़ा कृपालु है, जब वह अपने भक्तों को देखता है कि वह अपने को भूल गये हैं, और साहंकार होगये हैं, तब उनके दुःख की निवृत्ति के लिये अवतार लेकर उपदेश करता है, सुनो मैं तुमको एक आख्यायिका सुनाता हूं—एक समय देवासुर संग्राम हुआ, उस युद्धमें देवताओंकी जीत, और असुरोंकी हार हुई, तीन प्रसिद्ध देवता अग्नि, वायु, इन्द्र कैलास पर बैठ कर गप्प मारनेलगे, और आपुस में कहते थे कि आज मेरे भुज का हाल असुरों को भली प्रकार मालूम हुआ होगा, वह संग्राम के मैदान से ऐसे भागे जैसे बादल वायु के वेग से इधर उधर भाग जाते हैं, मेरे शस्त्र उनके शरीरों पर ऐसे ज़ोर शोर से पड़ते थे कि मानो लुहार निहाई पर हथौड़े से लोहे को पीट रहा है, अब क्या उनकी शक्ति है कि फिर वह हम लोगों का सामना करसकें, इस उनके अहंकार के तोड़ने के लिये परमात्मा एक यक्ष का रूप धारण कर उनके सामने थोड़ी दूर पर दिखाई पड़ा, जिसको देखकर उनकी आँखें चकाचौंध होगईं, और आपुस में विचार करने लगे कि यह करोड़ों सूर्य्यों के कांति करके सुशोभित पुरुष कौन है, ऐसा कहकर सबों ने अग्नि देवता से कहा कि तुम जाकर जांच करो कि वह कौन है, उसने कहा "तथास्तु" बहुत अच्छा यह कहकर वह यक्ष के समीप गया, और विना दंडप्रणाम किये हुए काष्ठवत्

खड़ा होगया, यक्ष ने पूछा कि तू कौन है, वह गर्व से गर्वित होकर बोला, क्या तुम नहीं जानते हो कि मैं अग्नि देवता हूं; मेरा नाम वेद में जातवेद है, यक्ष ने पूछा कि तेरे विषे सामर्थ्य क्या है, उसने जवाब दिया कि एक पलक में मैं कुल ब्रह्मांड को भस्म कर सक्ता हूं, और मेरे बिना कोई देव, दनुज, यक्ष, राक्षस, मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव, जंतु, कीड़े, मकोड़े, भूत प्रेत, वनस्पति आदि ज़िन्दा नहीं रह सक्ते हैं, कुल सृष्टि का पालन पोषण करनेवाला मैं ही हूं, तब यक्ष ने हँसकर एक तृण उसके सामने रखदिया, और उसकी कुल शक्ति को अपने में खींच करके कहा कि हे अग्निदेव! तुम इस तृण को जला दो, अग्निदेवता अपने को शक्तिहीन पाकर उस तृण के जलाने में अ-समर्थ होता भया, और उसको शर्मिन्दा होना पड़ा, तब यक्ष ने कहा कि हे अग्निदेवता! क्या तुम्हारे में गप्प ही गप्प था, ब्रह्माण्ड को कौन कहे तुम तो एक तृण भी जला न सके, वह चुपचाप लौट गया, और वायु और इन्द्र देवता से सब हाल बयान किया, तब इन्द्र देवता ने वायु से कहा कि हे भाई! तुम जाकर दरयाफ़्त करो कि यह सामने कौन है, वह "तथास्तु" कहकर चल पड़ा, और यक्ष के सामने साहंकार खड़ा हो गया, यक्ष ने उससे पूछा कि तू कौन है, उसने ज़-वाब दिया कि मैं वायु देवता हूं, मुझे वेद में मातरिश्वा

कहते हैं, तब यक्ष ने पूछा कि तेरे विषे क्या समर्थ है, उसने जवाब दिया कि मैं कुल ब्रह्मांड को क्षणमात्र में उड़ा दे सक्ता हूं, मेरे वगैर कोई नहीं रह सक्ता, सब का मूलाधार मैं ही हूं, उस यक्ष ने उसकी शक्ति अपने में खींचकर कहा कि इस तृण को जो तुम्हारे सामने रक्खा है, उड़ादो, वायु देवता अपने को शक्तिहीन पाकर उस तृण के उड़ाने में असमर्थ होता भया, तब यक्ष ने कहा कि भाई सब तुम्हारी गप्प कहां गई, ब्रह्मांड का उड़ाना दूर किनार रहा, तुम एक तृण भी न उड़ा सके, वह लज्जित होकर वापिस चला गया, और सब हाल अग्नि और इन्द्रदेवता से कहा, इन्द्रदेवता की बुद्धि यह हाल सुनकर दंग होगई, वायु और अग्निदेवता के कहने से वह यक्षकी ओर चला, परन्तु मार्ग में चिन्तवन करने लगा कि ऐसा कौन देवता है सिवाय ब्रह्म के जो अग्नि और वायु देवता की समर्थ को असमर्थ करदे—हो न हो यह ब्रह्म है, मनही मन में प्रणाम करताहुआ चला जाता था, जब यक्ष ने देखा कि इन्द्र अहंकाररहित आता है, वह उसी जगह तिरोभाव होगया, और उसी जगह पर उमा देवी सब आभूषणों से आभूषित दिखलाई पड़ी, यक्ष को न देखकर इन्द्र अपने मन में खड़ा होकर ग्लानि करनेलगा, और कहता था कि हां मुझसे तो अग्नि और वायु देवताही श्रेष्ठ हुए, उन्हों ने ब्रह्म का दर्शन पाया, मैं दर्शन से अलभ्य

रहा; ऐसा मनन कर रहा था कि इतने में उमा समीप स्थित होगई, इन्द्रराज ने परिक्रमा कर साष्टांग दंड-वत् करके प्रार्थना किया, हे जगन्माता! यह यक्ष कौन था, और क्यों दिखलाई पड़ा, और क्यों इन्द्रिय अगोचर हुआ, उमा ने कहा, कि हे पुत्र! यह यक्ष ब्रह्म था, जब तुम तीनों को अहंकार से भरा पाया, मन में विचार किया, अहंकारी पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं, तुमको घोर नरक से बचाने के लिये ब्रह्म यक्ष का रूप धारण करके तुम्हारे समीप में प्रगट हुआ था, जो उप-देश तुम लोगों के कल्याणार्थ उसने मुझसे कहा था उसको मैं तुम्हारे प्रति कहती हूं, सावधान होकर सुनो हे इन्द्र! न देवताओं में कोई शक्ति है, और न असुरों में, जिसको वह अपनी शक्ति दे देता है वही शक्तिमान् होजाता है, और जब अपनी दी हुई शक्ति देवताओं से निकाल कर असुरों में प्रवेश कर देता है, तब असुर जीत जाते हैं, और देवता हार जाते हैं, और जब असुरों की शक्ति खींचकर देवताओं में डाल देता है तब देवता जीत जाते हैं और असुर हार जाते हैं, देवासुर संग्राममें तुम देवतालोग इस कारण जीत गये कि ब्रह्म ने अपनी शक्ति असुरों में से निकाल कर तुमलोगों में प्रवेश कर दी थी, करुणानिधान की ऐसी रीति सदा रहा करती है, हे इन्द्रराज! देखो स्वतः किसी में शक्ति नहीं है, उसकी ही शक्ति से सब शक्तिमान् हैं, स्थूल और सूक्ष्म आदि

शरीर सब मिट्टी के खिलौने की तरह जड़ हैं, वे चैतन्य शक्ति करके चैतन्य हो रहे हैं, उसी की कृपादृष्टि करके रंक कुबेर हो जाता है, और एक दीन दुःखी प्रजा, चक्रवर्त्ती महाराज हो जाता है, और जब परमात्मा अपनी शक्ति उठा लेता है, तब चक्रवर्ती महाराजा कारागार में पड़ जाता और धनाढ्य द्वार द्वार भीख मांगता फिरता है, हे पाठकजनो! हे मित्रगणो! इस उमाकृत उपदेश पर ध्यान देकर चलो इसमें तुम्हारा कल्याण है.

हे मैत्री! परमात्मा की विभूति जो विचित्र माया करके उत्पन्न होकर स्थित है, उसका अन्त नहीं, जितनाही उसके अभ्यन्तर प्रवेश करो, उतनाही वह दुर्विज्ञेय होती जाती है, जितनेही उसके कार्य की सूक्ष्मता ब्रह्म से सम्बन्ध रखती है, उतनेही आश्चर्य और अद्भुत चरित्र देखने में आते हैं, हे मैत्री! तुम को याद दिलाता हूं कि एक बार हम तुम दोनों इस वन से निकल कर बाहर गये थे, वसन्त ऋतु अपनी चमत्कारी दिखा रही थी, चारों तरफ़ फूल फूल रहे थे, हर एक अंग में अनंग अपनी शोभा दिखा रहा था, एकाएक तुम्हारी हमारी आंखें सामने के मैदान में जापड़ीं तो क्या देखा कि दो राजाओं की सेना जीत की अभिलाषा में उमंग होते हुए अपनी अपनी सेना लिये हुए खड़े हैं, सिपाही ऐसे खड़े हैं मानों घटा छा गई है, हाथियों की लाइन ऐसी बँधी है मानों काले पहाड़ खड़े हुए हैं,

घोड़े पवन से बातें कर रहे हैं, नग्न तलवारों की चमा-चमी ऐसी होती थी, मानों बिजुली बादल में चमक रही है, शूरवीरों के गोरे चिहरों पर ऐसी उमंग छाई थी कि मानों गुलाब के फूल खिलेहुए हैं, शंखों के सिंहनाद होतेही दोनों सेना मैदान में झुक पड़ीं, और खचाखची होने लगी, हाथियों पर से तीर सनासन ऐसे चलनेलगे मानों वर्षाऋतु में बादलों से पानी बरस रहा है, चन्द्रहास पुरुषों की हड्डियों पर ऐसी कटाकुटी कर रही थी, मानों लोहार स्थूणों पर घन मार रहे हैं, एक पहर बाद जब संग्राम समाप्त होगया तो देखा कि लाशों की ढेर लग गई है, जो हाथी पर्वताकार मदमत्त खड़े थे उनको गीदड़ भक्षण कर रहे हैं, जो घोड़े वायु को पछाड़कर जानेवाले थे और अपने बल बल में किसीको समझते नहीं थे, वे स्वांसरहित होकर घोर निद्रा में सो रहे हैं, और उनके आंख मुंह नाक को चींटियां भयरहित होकर भक्षण कर रही हैं, योद्धा लोग जो भूषणों से आभूषित थे और वीररस में मस्त थे वे युद्धभूमि की शय्या पर अहंकार मान मत्सर त्यागे हुए उदासीन पड़े हैं, और उनके सुन्दर मुखों को गृद्ध नोच २ कर खारहे हैं, हे मैत्री! देखो एक सूक्ष्म शरीर के निकल जाने से स्थूल शरीर की क्या गति हो जाती है, यह सूक्ष्म शरीर पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांचप्राण और मन बुद्धि चित्त अहंकार के मेल से बना है, यह

आत्मा के संबंध से कैसा शक्तिमान् है, और इस सूक्ष्म शरीर के बल को लेकर यह स्थूल शरीर कैसा बली और चन्द्र और सूर्य की कान्ति को शर्मानेवाला प्रतीत होता है, यह लिंग शरीर माया का कार्य है. हे मैत्री! अनुभव करो कैसी यह माया बलवान् है.

मैत्री–हे भगवन्! माया को सविस्तार कहिये, जिस से इतर पुरुष मेरे और आपके संवाद को पढ़ या सुन-कर उससे और उसके कार्य्य से अपनी वृत्ति को खींच-कर चैतन्य आत्मा में लगावें और अपने सच्चिदानंद स्वरूप को प्राप्त होवें.

याज्ञवल्क्य–हे मैत्री! सुनो. 'मा' के माने संस्कृत में नहीं के हैं, और 'या' के माने संस्कृत में जो के हैं; जो नहीं है पर प्रतीत होती है वह माया है, न यह सत् है, और न यह असत् है, सत् उसको कहते हैं जो सदा एकरस रहै, जिसमें कोई भेद कभी न होवै, और असत् वह है जिसकी स्थिति किसी काल में होवै और किसी काल में न होवै, अज्ञानअवस्था में भासै पर ज्ञानअवस्था में उसका पता न लगै. जैसे मृगतृष्णा का जल, रेगिस्तान में दूर से दोपहर के स-मय एकाएक ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानों जल का समुद्र भरा पड़ा है, ज्यों ज्यों भ्रान्तिमय पुरुष प्यास करके सताया हुआ उसके पीछे दौड़ता है, त्यों त्यों वह जल आगे को भागता जाता है, आखिर को

वह पुरुष विकल होकर गिरकर मर जाता है, अब देखो अगर वह जल सत् होता तो भागता नहीं, उससे स्नानादिक कार्य सिद्ध होते, पर ऐसा तो होता नहीं, और अगर असत् होता तो दिखाई न देता; असत् की कोई सत्ता नहीं है, पर वह जल दिखाई देता है, इसी से मालूम होता है कि मृगतृष्णा का जल सत् असत् से विलक्षण है, यही माया है, सब कोई दुःख से भागने की इच्छा करते हैं, मगर जब स्त्री के बालक उत्पन्न होता है, वह विचारी उस बालक के साथ मलमूत्र में पड़ी रहती है, उस बालक से भागती नहीं है यही माया है, हम सब देखते चले आते हैं कि हजारों स्त्री पुरुष मर गये पर हम यही सोचते हैं कि हम सदा जीते रहेंगे, और सहस्रों वर्ष के वास्ते सामान तैयार करते हैं उसके यत्न में जान भी खो बैठते हैं यही माया है.

हे मैत्री ! माया का कथन कौन कर सक्ता है, जो कुछ इन्द्रियों और मन आदिकों का विषय है वह सब माया है. हे मैत्री ! तुम माया के पीछे मत पड़ो, अगर तुम माया का अनुभव करती रहोगी तो तुम भी माया की तरह चंचल, दुःखी, नाशवान् होजावोगी, संग का बड़ा असर होता है, संगही से अच्छे बुरे हो जाते हैं, और बुरे अच्छे हो जाते हैं, सुसंग बनाता है, कुसंग बिगाड़ता है. संग दो प्रकार का होता है, एक देही संग, दूसरा आत्मिक या वृत्ति संग; देहीसंग एक जगह

जीवों के रहने से होता है, और आत्मिक संग मनवृत्ति या ख़्याल को किसी के साथ लगाने से होता है. देहीसंग का असर कम होता है, पर आत्मिकसंग का असर इतना बड़ा होता है कि कभी साधक साध्य की तरह हो जाता है और कभी साध्य साधक की तरह हो जाता है, जैसे हिरण्यकशिपु सदा विष्णु भगवान् को अपने मन में शत्रुभाव से देखता था, यानी उसकी वृत्ति दुष्टभाव करके परमात्मा से लगीहुई या निरन्तर संग किये हुए रहती थी, इस कारण उसका जीव शरीर त्यागने के पश्चात् प्रभुके ऐसा होकर उस में लीन हो गया, यह उदाहरण साधक के साध्य होजाने का है, भृंगी जब झींगुर को पकड़ लेती है तो उसको अहर्निश पेट से दबाये रखती है और उसके कान में भिन्न २ का शब्द किया करती है और इसका फल यह होता है कि वह झींगुर भृंगी बनजाती है, यह साध्य के साधक होने का उदाहरण है; अगर साध्य बलवान् है तो साधक को अपना ऐसा बना लेता है, और अगर साधक बलवान् है तो वह साध्य को अपना ऐसा बना लेता है–हे मैत्री ! इसी वास्ते ब्रह्मवादियों ने माया का बहुत कथन नहीं किया है, क्योंकि उसका कथन करना व्यर्थ है, उसके अधिष्ठान चेतन का कथन श्रुति वारंवार करती है, ताकि मुमुक्षु पुरुषों की वृत्ति उसमें लगकर उसी सच्चिदानन्द को प्राप्त होजावे, और आवागमन से रहित हो जायँ;

हे मैत्री ! जब पुरुष कोई देखी हुई वस्तु, जगह, या दूसरे पुरुष को स्मरण करता है तो चहे वह कितनीही दूर पर होवै और मध्य में चहे कितनेही व्यवधान पड़ें किसी को न देखकर स्मृतिज्ञानचक्षु वहीं पहुँच कर उस वस्तु, जगह या पुरुष को ऐसी साक्षात् दिखाती है कि मानों वह नेत्र के सामने ही खड़े हैं, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुषों के मनरूपी नेत्र माया और माया के कार्य को न देखते हुए उसके अधिष्ठान चेतन विषे निरंतर ऐसी टकटकी बांधे रहता है जैसे कि चकोर चन्द्रमा की ओर और उनके हृदयरूपी कुमोदिनी चन्द्रमारूपी चेतन आत्मा की तरफ़ मुंह फेरतेही आनन्द से खिलजाती है, और उसके रसका स्वाद लेने लगती है, या जैसे मधुकर खिले हुए कमलके अभ्यन्तर प्रवेश कर पराग का रस लेताहै, और उसके इर्द गिर्द की सामग्री से कोई प्रयोजन नहीं रखताहै यहां तक कि उनकीओर देखताभी नहीं है, इसी तरह से ज्ञानी का मनरूपी भँवर चेतनरूपी परागपर बैठ कर मस्त होजाता है, और माया जो चेतनको आच्छादित किये रहती है, उसकी तरफ़ दृष्टिभी नहीं डालता है, इस लिये उसके होते हुए भी वह न होने के बराबर है.

हे मैत्री ! जितने लोक हैं, वे दूसरे करके प्रकाशमान हैं, स्वयं प्रकाशमान नहीं हैं, पर आत्मा स्वयं प्रकाशमान है, इसको न सूर्य न चन्द्रमा न तारागण न अग्नि प्रकाश कर सक्ते हैं, स्वप्नअवस्था में यह आत्मा अपने

प्रकाश करके सब पदार्थों को देखता है, वह सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, वृक्ष, जीव, जन्तु, कीड़े, मकोड़े, नदी, नाले, पहाड़, देव, किन्नर, मनुष्यादि, सब को अपने में उत्पन्न करके उनके साथ विहार करता है, और जब सुषुप्ति में जाता है किसी का पता नहीं लगता है, सब को अपने में लोप कर लेता है, जैसे मकड़ी अपने से जाले को उत्पन्न करके अपने में ही लय कर लेती है.

हे मैत्री! दुःख और भय अन्तःकरणविशिष्ट चेतन को होता है, केवल चेतन आत्मा को नहीं, सुषुप्तिअवस्था में मन बुद्धि और अहंकार लय रहते हैं, केवल चेतन आत्मा जागता रहता है, जब पुरुष सुषुप्ति अवस्था में होता है, तब अगर उसके पास चाहे शत्रु तलवार लेकर मारने के वास्ते खड़ा हो, चाहे राजा पकड़ने को स्वतः आया हो, चाहे मृत्यु भगवान् ले जाने के वास्ते पधारे हों, वह सोया हुआ पुरुष अपने आनंद में मस्त है, मगर जब मन बुद्धि अहंकार जाग्रत् अवस्था को प्राप्त होते हैं और पुरुष उठकर बैठ जाता है, तभी उस को भय होने लगता है, वह शत्रु आदिकों को देखकर भागता है, इससे प्रत्यक्ष है कि चेतन आत्मा निडर है, शोकरहित है नाशरहित है, हे मैत्री! इस गति को वही जीतेजी प्राप्त होता है जिसकी वृत्ति अपने लक्ष्य चेतन आत्मा से कभी नहीं हटती है.

हे मैत्री! सुनो जब द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यगण पांडव आदिकों को अस्त्र शस्त्र विद्या में निपुण करके देखना चाहा कि सब में कौन शिष्य श्रेष्ठ है, इस प्रयोजन से एक अति छोटी चिड़िया लकड़ी की बनवा कर के उसकी टोंट जो एक तिल के बराबर थी उसको लाल रंग कर एक दूर के वृक्ष की चोटी पर खड़ी कर दी, और अपने शिष्यगण राजपुत्रों से कहा कि हरएक तुममें से बाण अनुसंधान करो और चिड़िया की टोंट को लक्ष्य करके बताओ कि तुम क्या २ देखते हो, युधिष्ठिर ने लक्ष्य लगा कर कहा कि मैं आपको, वृक्ष को, और सब आपके स्थित शिष्यों को, और चिड़िया के पूरे शरीरको देखताहूं, इस बात को सुनकर द्रोणाचार्य को रंज हुआ, और उस युधिष्ठिर को तिरस्कार की दृष्टि से देखकरके अलग करादिया, इसप्रकार औरोंका भी जांचकिया, मगर कोई परीक्षा में उत्तीर्ण न हुआ, तब सब के पीछे अर्जुन को बुलाकर कहा हे पुत्र! मेरे मनोरथ को सिद्ध करो, उसने तीर को धनुष पर रखकर लक्ष्य किया, तब द्रोणाचार्य ने कहा तू किस २ को देखता है, उसने कहा हे महाराज! चिड़िया की टोंट के अग्रभाग के सिवाय और कुछ नहीं देखता हूं, मेरेको न अपना, न वृक्षका, न पृथ्वीका, न आकाश का, और न मनुष्यादिकों का पता है, मुझको जो कुछ दीखती है वह चिड़िया की टोंट दीखती है, द्रोणाचार्य बड़े प्रसन्नहुए, और कहा

तीर चला, उसने चलाया, धमसे चिड़िया नीचे गिरपड़ी, हे मैत्री! जब चित्तकी वृत्ति ऐसही लक्ष्यरूपी आत्मा में लगती है तब पुरुष अवश्य ब्रह्मको प्राप्तहोकर संसार के दुःखों से छूटजाता है.

हे मैत्री! सुनो जीवों के शरीर विषे पांच कोष हैं, अन्नमय कोष (स्थूलशरीर), प्राणमयकोष, मनोमय कोष, विज्ञानमयकोष, और आनन्दमय कोष, इन सब में आत्मा व्यापक है, परन्तु जितनाही उपाधि (कोष) शुद्ध है, उतनाही उसमें आत्मा का प्रकाश विशेष है, सबसे अधिक आनन्दमयकोष शुद्ध है, इसलिये उस में आत्मा का प्रकाश भी विशेष दिखाई देता है, आनन्दमयकोष के अभ्यन्तर जो आत्मा का प्रकाश है, वह और उसका आभास जो उपाधि के संबंध से उत्पन्न हुआ है, दोनों मिलकर विज्ञानमयकोष को विशेष प्रकाशते हैं, इसीतरह विज्ञानमय कोष मनोमय कोष को, मनोमय कोष प्राणमय कोष को, और प्राणमय कोष अन्नमयकोष याने स्थूल शरीर को प्रकाश करता है, इसी कारण जबतक जीव में जीवत्व है, तबतक मंगलरूप है, जब जीव चलाजाता है तब शरीर अमंगल होजाता है, उसके छूने में भी अपवित्रता आजाती है, जो ज्ञानी पुरुष हैं, वे सदा कोषों में स्थित रहतेहुये चेतन आत्माका अनुभव करते हैं, और ऐसे अनुभव करते २ वह शरीर रखतेहुये भी ब्रह्मरूप होजाते हैं,

उन में और ब्रह्म में कोई भेद रञ्चकमात्र भी नहीं है.

हे मैत्री! सुनो संसार में यावत् वस्तु हैं वे सब तम करके नामरूप से रहित आच्छादित हैं, जब सूर्य, जो अग्निका विशेषरूप है, उदय होता है, तब संसार और संसार की वस्तु दिखाई देनेलगती हैं, और उनके साथ नामरूप भी प्रतीत होने लगते हैं, जब सूर्य अस्त होजाता है, और वर्षाऋतुमें मेघ से सब तारे गण छिप जाते हैं तो कोई वस्तु दिखाई नहीं देती है, न उस वस्तु का उस समय कोई रूप है, और न नाम है, इसीप्रकार जब विशेप चेतन आत्मा के सामने मन,बुद्धि, चित्त, अहंकार, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण स्थित रहते हैं तबतक उनका रूप, नाम, कार्य आदिक बने रहते हैं, और ज्योंही विशेष चेतन आत्मा से अलग भये फिर उनका पता नहीं लगता है, हे मैत्री! यह चेतन आत्माका प्रकाश उस समय दिखाई देता है, जब सब बाह्यप्रकाश का अभाव होजाता है, जब सूर्य अस्त होजाता है तब पुरुष अपना कार्य चन्द्रादि नक्षत्रगणों के प्रकाश से करता है, और जहां यह नहीं हैं, वहां दीपकादि को जलाकर काम करता है, जहां दीपकादि भी नहीं है वहां शब्द को सुनकर काम करता है, और जहां शब्दभी नहीं है, जैसे स्वप्न में, वहां आत्मा स्वयंप्रकाश होकर मनादिकों के व्यवहार को देखता है, यह इसकी अकथनीय महिमा है.

मैत्री—हे भगवन्! सुषुप्ति अवस्था में यह चेतन आत्मा क्यों नहीं स्वयंप्रकाश होता है?

याज्ञवल्क्य—हे मैत्री! सुषुप्ति अवस्था में भी यह आत्मा स्वयंप्रकाशमान है, क्योंकि वहां दो वस्तु हैं, एक तो अज्ञान दूसरा आनन्द इन दोनों का द्रष्टा आत्मा बनारहता है, परन्तु स्वप्न में तो अज्ञान का कार्य अनेकप्रकार का प्रपञ्च सुख दुःखादि जो बहुत स्थूल हैं उनका द्रष्टा यह आत्मा रहता है, और सुषुप्ति में जो आदि कारण अतिसूक्ष्म अज्ञान है, और जो अपना वास्तविक स्वरूप आनन्द है, उसका द्रष्टा यह आत्मा रहता है; यदि आत्मा स्वयंप्रकाश न होवै तो द्रष्टा भी न होवै, और सुषुप्ति में आत्मा स्वतः सामान्यरूप से स्थित है, इसलिये वह सूक्ष्म वस्तु को अनुभव करता है, और जाग्रत् में मन, बुद्धि आदिकों के सम्बन्ध होने से उस सूक्ष्म वस्तु के अनुभव कियेहुये को स्मरण करके लोगों के पूछनेपर कहता है कि मैं ऐसा आनन्द से सोया कि खबर न रही, हे मैत्री! अब तुमको मालूम होगया होगा कि यह आत्मा सदा एकरस सबका द्रष्टा है.

हे मैत्री! मैं तुम से कहचुका हूं कि यह आत्मा द्रष्टा दृश्य दोनों रूप से स्थित है, उपाधि करके एक अवस्था में द्रष्टा कहलाता है, और दूसरी अवस्था में वही दृश्य, देखो सरसों के बीज से तेल निकाला जाता है, वह तेल दृश्य है, परन्तु जब मृत्तिका के दीपक में तेल रक्खा

जाता है और दीपक के अन्दर रुई की बत्ती बनाकर रक्खी जाती है, और फिर वह बत्ती जला दीजातीहै तब वही दीपक विषे स्थित तेल प्रकाश करतेहुये और और तेलों का जो उसके प्रकाश में रक्खे हैं द्रष्टा कहलाता है, ऐसे ही सामान्य चेतन आत्मा व्यापक होकर स्थित है और जो कुछ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, आदिक हैं सब वहीरूप हैं, और इस अवस्था में न वह द्रष्टा है और न दृश्य, पर जब आत्मा, मन, बुद्धि आदिकों के सङ्ग करके सामान्य अंश से विशेष अंश को प्राप्त होता है, तब वह द्रष्टा है, और सब दृश्य हैं, द्रष्टा दृश्य में वास्तव करके कोई भेद नहीं है, पर अवस्था करके भेद है, जैसे समुद्र और लहर में, जल और बर्फ में, सोना और सोने की अंगूठी में कोई भेद वास्तव करके नहीं है पर अवस्था करके अवश्य है.

मैत्री—हे प्रभो ! आपने कहा कि आत्मा स्वयंप्रकाश स्वप्नावस्था में रहता है सो ठीक है, पर वह सुषुप्ति अवस्था में तो स्वयंप्रकाश नहीं दिखाई देता है.

याज्ञवल्क्य—हे मैत्री ! सुषुप्ति अवस्था में भी आत्मा स्वयंप्रकाश है, परन्तु उस अवस्था में यह आत्मा तमोगुण से आच्छादित रहता है, और बिना रजोगुण के केवल तमोगुण किसी कार्य के करने में असमर्थ है, इसलिये आत्मा सुषुप्ति में किसी व्यवहार या प्रपञ्च का

द्रष्टा नहीं, केवल अविद्या का द्रष्टा रहता है, और इसी कारण से वह अज्ञानता को अनुभव करता है, और जाग्रत् में आनकर कहता है कि मैं ऐसा सोया कि खबर न रही, और इसीप्रकार यह आत्मा अपने स्वरूपानन्द को भी सुषुप्ति में अनुभव करता है, इसलिये पुरुष उठ कर कहता है कि मैं बड़े आनन्द से सोया, सुषुप्ति अवस्था में केवल दो ही वस्तु याने एक मूलाज्ञान और दूसरा आनन्द रहताहै (जहां आनन्द है वहीं सत् और चित् भी है) और यह आत्मा इन दोनों को अनुभव करता है, देखना और अनुभव करना एकही बात है, किन्तु अनुभव करना देखने की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है, आनन्द देखा नहीं जासक्ता है, परन्तु अनुभव किया जा सक्ता है, जैसे वर्षाकाल में मेघ से घिरी हुई अँधेरी रात्रिमें चर्मदृष्टि कुछ नहीं देखती है, तैसेही यह आत्मा तमोगुणसे आच्छादित हुआ २ अविद्या और अविद्याकी सुषुप्ति अवस्था में जाग्रत् अवस्था की तरह अति सूक्ष्म कार्यको नहीं देखता है, अलबत्ता उसका अनुभव करता है, हे मैत्री ! यद्यपि सुषुप्ति अवस्था में आनन्द अविद्या के साथ है तौ भी इस आनन्द के लिये सब जीवों की बड़ी इच्छा होती है, बालक जिसको नींद आकर जब घेर लेती है तब वह मोदकादिकों को जो उसको बहुतही प्रिय हैं त्याग देता है, युवावस्था को प्राप्तहुआ पुरुष तरुणी को, जो तरुण की उमँगता को प्राप्त है, और

उसके साथ मनोरञ्जन करने की इच्छा भी है, परन्तु सुषुप्ति अवस्था आते ही उसको भी त्याग देता है, यदि पुरुष को अविद्यारहित आनन्द मिले तो फिर विपयानन्द की तरफ़ क्या कभी मुँह करसक्ता है, कभी नहीं, हे मैत्री ! जब पुरुष की अविद्या दूर होजाती है और ज्ञान उदय होता है तब उसकी वह तुरीयावस्था कहलाती है, इस अवस्था में आनन्द तो सुषुप्ति के आनन्द के तुल्य होता है, और ज्ञान जाग्रत् के ज्ञान के तुल्य होताहै, इस अवस्था में निरन्तर ब्रह्माकार वृत्ति बनी रहती है, और जब पुरुष अपने सच्चिदानन्द स्वरूप के समुद्र में मग्न होजाता है तब उसकी वह अवस्था तुरीयातीत कही जाती है, तुरीयातीत को प्राप्तहुये पुरुष का शरीर इक्कीस दिन से अधिक नहीं रहता है, इस अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष आवागमन से रहित होजाता है, हे मैत्री ! यदि शरीर रखते हुये पुरुष का चित्त चेतन के विलासमें आह्लादित है, तो वह ब्रह्मके आनन्द को प्राप्त है, जो जीव और मन से एक बार संवाद हुआ है उस को मैं तुम्हारे हर्षार्थ कहता हूं सुनो.

जीव–हे प्यारे मन ! तेरा मेरा साथ करोड़ों जन्म जन्मान्तर से चला आता है, तूने अपनी हरी भरी वाटिका दिखाकर मुझको मोहित कररक्खा है, और अपने को भूलकर मैं तेरा दास बनगया हूं, बता तू कौन है, और अब तेरी क्या इच्छा है ?

मन—हे जीव! यद्यपि आप इच्छारहित हैं पर मेरे प्रसाद द्वारा आपने क्या २ नहीं भोगा है, राजा हुये, महाराजा हुये, शूरवीर हुये, इन्द्र कहलाये, पर्वत वृक्षादि जड़ पदार्थों से मैंने आपको निकाला, समुद्रादिक से बाहर लाया, कीड़े मकोड़े, पशु पक्षी की योनिसे मनुष्ययोनि को प्राप्तकिया, और फिर ब्रह्मऋषियोनि को प्राप्तकिया, अब आप मुझ से पूछते हैं कि मैं कौन हूं और क्या मेरी इच्छा है.

जीव—हे मन! तूने उत्कृष्ट योनियों को तो कहा, पर निकृष्ट योनियों को जो तेरे सबब से मुझको प्राप्त हुई तूने नहीं कहा, मैं अब उन बुरी योनियों को अनुभव करके पछताता हूं, तुझ करके मैंने अनेक दुःख उठाये हैं, स्वर्ग से नरक को गया, देव से चांडाल बना, मल मूत्र में पड़ा रहा, मेरी जो २ दुर्दशा हुई है, उसको मैंही जानता हूं.

मन—हे जीव! साथ में अच्छा और बुरा दोनों भोगने पड़ते हैं, आप मेरा हाल नहीं देखते हैं कि विषयों के साथ विषयाकार मेरी वृत्ति होती है, और ब्रह्म के साथ ब्रह्माकार वृत्ति होती है; विषय के साथ दुःख उठाता हूं; क्योंकि विषय दुःखरूप है, और ब्रह्म के साथ आनन्द भोगता हूं, क्योंकि ब्रह्म आनन्दरूप है.

जीव—हे मन! मालूम होता है कि किसी महात्मा ने तेरी वृत्ति फेरदी है, यह तेरी वृत्ति कि ब्रह्म आनन्द

रूप है, और उसके साथ मिलकर आनन्दित होजाताहूं, विना उपदेश किसी ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के नहीं होसक्ती है.

मन–हे जीव! क्या आपको मालूम नहीं है कि जब मुझकरके प्रेरा हुआ अज्ञानता में पड़कर बहुतकाल पर्यन्त आपने दुःख उठाया था और फिर अपने न्यून पुरुषार्थ करके कुछकाल शुभ कार्य किया और फिर सुख भोग करके मृत्युलोक में आये और ऊपर के लोकों को गये, इस तरह आपको जाते आते जब घृणा हुई तब आपने विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति, और मुमुक्षुता का आश्रय किया और निष्काम कर्मों को करके मेरे को ईश्वर की ओर लगाया। हे जीव! यद्यपि आप अजर, अमर, निस्सङ्ग, निष्काम, वासनारहित, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप हैं, परन्तु जो आपने मेरे में अपना घर बना लिया है; इसलिये जैसे२ मेरी वृत्ति होती है, वैसे२ आपभी भासने लगते हैं, जैसे कोई चिड़िया एक छोटी पतली डाली पर बैठीहुई जैसे २ डाली हिलती है वैसे२ वहभी हिलती प्रतीत होती है, यद्यपि वह अपनी इच्छा से कभी नहीं हिलती है, हे जीव! विना मेरी कृपा के आपका उद्धार कभी नहीं होसक्ता है.

जीव– हे मन! यह तेरा कहना तबतक ठीक था जबतक मैं अपने स्वरूप से च्युत था, तू क्या अपने को स्वयं चेतन समझता है; तू बिल्कुल काष्ठवत् जड़ है; तू कार्य के करने में असमर्थ है, मेरी सत्ता को लेकर तू

शक्तिमान् है; मेरी सत्ता से पृथक् तेरी कोई सत्ता नहीं है, मैंने जवतक अपने को तुझ से अलग नहीं जाना था तबतक मैं तेरे साथ दुःख, सुख भोगता था, सुन मैं तुझ से एक और वार्त्ता कहता हूं—

एक समय एक सिंहनी वच्चा देते समय मरगई, उस बच्चे को एक गड़रिये ने पाला, और वह भेड़ों के साथ रहने लगा, रहते २ उसने भेड़ के सब गुणों को ग्रहण करलिया, और अपने को एक भेड़ समझने लगा, एक दफा एक सिंहने उसको देखा, सोचा कि यह हमारी जाति का है, यह भेड़ कैसे होगया, उसके ऊपर दया आई, और कूदकर उसको पकड़ लिया, वह चिल्लाया, रोने लगा, मैं भेड़ हूं, तू मुझ को मत खा, उसने कहा तू भेड़ नहीं, तू तो सिंह है; जब उसको किसी तरह से भी विश्वास न आया, तब उस सिंहने उसको लेकर एक कुएँ की जगत पर खड़ा होकर कहा कि तू अपने मुँह को और मेरे मुँह को कुएँ के पानी में देख, और बता कोई भेद है ? उस वच्चे ने वैसेही किया, और कहा कि कोई भेद नहीं मालूम होता है, तब फिर सिंह ने कहा कि अपने आकार को भेड़ों के आकार से मिला मिलता है कि नहीं, उसने वैसाही करके कहा कि भेड़ों से मैं भिन्न हूं, तव सिंहने कहा कि जैसे मैं बोलता हूं, कूदता हूं, वैसेही तूभी कर, वह वैसेही गर्जने लगा और कूदने लगा; सिंह ने कहा मैं सिंह हूं, पराक्रमी हूं, ये

सब भेड़ मेरे भोग हैं, मेरी गर्ज के सामने ये कोई नहीं ठहरते, तू भी मेरी तरह गर्ज, उसने गर्जा, सब भेड़ें भागीं, वह बच्चा हँसा और अपने वास्तविक स्वरूप को पाकरके अपने को सिंह अनुभव करने लगा, और आनन्द को प्राप्त हुआ, इसी प्रकार हे मन! मैं अपने असली, निर्भय, अविनाशी स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त हुआ हूं, अब तू भाग, नहीं तो तुझ को भक्षण कर जाऊंगा.

मन—वाह आपने अच्छा साथ का बदला दिया; धर्मशास्त्र में लिखा है कि अगर कोई किसी के साथ सात पद पर्यन्त चले तो वह उसका मित्र बनजाता है, और फिर उसका साथ नहीं छोड़ता है, मैंने आपका साथ करोड़ों वर्ष तक किया, आप अब मुझको भक्षण करने को तैयार हो, सुनो! युधिष्ठिर महाराज ने कुत्ते को जिस ने केवल एक महीने का साथ किया था, स्वर्ग को ले जाने को तैयार हुये, जब भगवान् कृष्णचन्द्र महाराज ने शरीर को त्याग किया और पाण्डवों ने रहना पृथ्वी पर अयोग्य समझा, तब उन्हों ने परीक्षित महाराज को राज्य देकर शरीरत्यागार्थ हिमालय पर्वत को सिधारे; उनके साथ एक कुत्ता भी होलिया, जहां २ वह ठहरते वहां २ वह भी ठहरता था, और जो कुछ वह खाते थे वह भी खाता था, जब भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल और द्रौपदी का देहत्याग होगया, केवल धर्मारूढ़

सत्यवादी श्रीयुधिष्ठिर महाराज बाकी रहगये, तब स्वर्ग लोक से ऐसा प्रकाश करता हुआ विमान चला आताथा मानों चन्द्रमा गगनमण्डल से नीचे के लोक पर प्रकाश करता हुआ और आनन्द की वर्षा करता हुआ चला आता है, और जब हिमालय की शीतल भूमिपर पहुंचा, देवगण, जो महाराज को लेने आये थे, हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा कि हे स्वामिन्! हे सत्यवादी पुरुष! आप सदेह स्वर्गको चलिये, और अपने पुरुपार्थ से उत्पन्न किये हुये भोगों को भोगिये, युधिष्ठिर महाराज ने उत्तर दिया कि पहले इस कुत्ते को जिसने मेरा साथ एक महीने तक दिया है, विमानपर बैठालो, उसके पीछे मैं भी बैठलूंगा, देवताओं ने कहा कहीं कुत्ता भी स्वर्ग को जाता है, आजतक कोई बड़े २ शुभकर्मी लोग भी सदेह नहीं गये हैं, कुत्ते को कौन कहे, राजा ने कहा आप का स्वर्गलोक आपके पास रहै, मैं अधर्म करके और पापसंयुक्त होकरके ऐसे स्वर्ग को नहीं जाना चाहता हूं, यह संभव है कि स्वर्ग त्यागदूं, सूर्य पूर्वसे पश्चिम में उदय हो आवै, पर मैं अपने साथी को त्यागकर स्वर्ग को जाऊं यह असंभव है। धर्मराज महाराज जो उस कुत्ते के स्वरूप में थे प्रकट हुये, और प्रसन्न होकर कहा कि हे पुत्र! तेरी परीक्षार्थ ऐसा मैं कुत्ता बना था, तू आपत्तिकाल में भी अपने धर्म से च्युत नहीं हुआ, तेरा यश संसार में सदा प्रथित रहैगा, यह कहकर गुप्त होगये और युधिष्ठिर महा-

राज स्वर्ग को पधारे, हे जीव ! जरा आप सोचिये क्या आपका यही धर्म है कि मुझको नाश करदेवें.

जीव—हे मन ! तू सत्य कहता है, मैं तुझको उस स्थान को पहुँचा दूंगा जहां से तू निकलकर आया है, तू अनेक कल्पों से भटकता हुआ फिरता है, तू महा आनन्दसमुद्र ब्रह्म से निकलकर विषयों की तरफ़ दौड़पड़ा है, और जैसे भ्रमर अनेक कलियों पर बैठकर रस लेता है पर तुच्छ आनन्द से तृप्त न होकर भागता फिरता है, वैसेही तू भी विषयों में आनन्द को न पाकर भ्रमण किया करता फिरता है, हे मन ! तू अब अपनी वृत्तिको बाहर से खींचकर अन्तर्मुख कर, क्योंकि जब ज्ञानेन्द्रियां बाहर की ओर दौड़ती हैं तब तू भी उनके साथ होकर, बाह्य विषयाकार बनकर और उसके संस्कार को अन्दर लाकर अन्तःकरणरूपी दर्पणमें डालता है, और तब उसका आकार जैसा बाहर था वैसाही अन्दर पड़ता है, और उसकी बुद्धिवृत्ति निश्चय करती है, और अहंकारवृत्ति दृढ़ करती है कि यह अमुक वस्तु है, वैसेही जब तेरी वृत्ति अन्तर्मुख होगी तो तू अपने अधिष्ठान चेतन ब्रह्म को अवलम्बन करके ब्रह्माकार बन जायगा, और चूंकि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है तू भी अखण्ड आनन्द को प्राप्त होकर मग्न होजायगा, और आवागमन से रहित होगा.

मन—हे जीव ! मैं आपको इस उपदेश के बदले

धन्यवाद देता हूं, और अब ऐसेही करूंगा जैसा आप कहते हैं, इसमें आपका भी कल्याण है, क्योंकि आप भी मेरे साथ आवागमन से छूट जायँगे.

जीव—हे मन ! तू क्या कहता है तेरे पुरुषार्थ से मेरा क्या उद्धार होसक्ता है, मैं सदा असङ्ग, निर्लेप, अद्वैत, आनन्दस्वरूप हूं, मेरे में न बन्ध है, न मोक्ष है, तेरे सम्बन्ध से मेरे में बन्ध अग्निलोहवत् भासता था, अब तू जब अलग होजायगा मैं ज्यों का त्यों रहूंगा, मेरे में तीन काल भी आना जाना नहीं हुआ, अब तू जैसा मैंने कहा है कर.

मन—हे जीव ! अब जैसा आपने कहा है वैसा ही करूंगा, देखो मैं विषयों की ओर से हटता हूं, और आनन्द समुद्र ब्रह्म की ओर जाता हूं.

याज्ञवल्क्य—हे मैत्री ! मन ब्रह्मानन्द समुद्र की तरफ दौड़पड़ा, और अखण्डानन्द को पाकरके निर्व्यापार होता हुआ उस में डूब गया, और फिर न निकला उसके डूबते ही, जीव भ्रम से रहित होकर और अपने वास्तविक स्वरूप को पाकरके हर्ष को प्राप्तहुआ, और जो कुछ कि वह मनके साथ असंख्य युगों पर्यन्त भ्रमण करता रहा उसको स्वप्नगत व्यवहार जाना, हे मैत्री ! यह पुरुष सदामुक्त है, मनके सम्बन्ध से बँधा हुआ प्रतीत होता है, जहां मन अलग हुआ तहां यह बन्ध-

रहित हुआ, अब तुम बतावो कि इस मेरे व्याख्यान से तुमको आनन्द मिला या नहीं.

मैत्री—हे भगवन्! आपकी कथा सदा अमृतरूप होती है, उसके सुनने से मेरा हृदय हर्ष को प्राप्त होजाता है, आपकी कृपा से मुझ को अनुभव हो गया कि मेरा चेतन आत्मा ब्रह्म है, इस शरीररूपी मन्दिर विषे मैं कल्याणरूप शिव हूं, मेरा नाश कभी नहीं है, मैं अवस्था-रहित हूं, जो मैं जाग्रत् में हूं, सोई मैं स्वप्न में हूं, और सोई मैं सुषुप्ति में हूं, तीनों अवस्था और उसके व्यवहार का मैं ज्ञाता हूं, जैसे राजाकी निराकार शक्ति लेकर सब नौकर चाकर राजा के विलास के लिये नाच रंग खेल कूद आदिक अनेक प्रकार के व्यवहार करते हैं, वैसेही मेरे चित्त विलास के लिये मेरी शक्ति को लेकर मन इन्द्रियादिक जो मेरे भृत्य हैं, अनेक प्रकार के व्यवहार को करते हैं, और मैं उनका और उनके व्यवहारों का द्रष्टा होकर शान्तरूप से स्थित हूं, राग, द्वेष, शोक, मोह, काम, क्रोध आदिक अन्तःकरण के धर्म हैं, क्षुधा पिपासा प्राण के धर्म हैं, और जन्म मरण स्थूल शरीर के धर्म हैं, मैं इन सब धर्मों से रहित हूं, मैं मुक्तस्वरूप हूं, मेरे को अब कुछ भी कर्तव्य नहीं है.

याज्ञवल्क्य—हे मैत्री! अब दूसरे प्रकार के ज्ञानी की वृत्ति का हाल तुमको सुनाता हूं, सावधान होकर सुनो, यह विवर्त्तवादी कहलाते हैं, इनका अनुभव इस

प्रकार है कि संसार न है न हुआ है, और न होगा, जो कुछ दिखाई देता है, वह केवल अधिष्ठान आत्मामें भास आया है, और इसलिये असत् है, जैसे स्वप्न की सृष्टि स्वप्न में भास आती है, और जाग्रत् या सुषुप्ति होतेहीं नष्ट होजाती है, वैसेही यह संसारी सृष्टि अज्ञान दशा में भासती है, ज्ञान होते ही इसका कहीं पता नहीं लगता है। हे मैत्री ! ईश्वर के समष्टि मन विषे ईश्वर की सृष्टि सम्पूर्ण जगत् भास आताहै, और जीव के व्यष्टि मन विषे जीव की सृष्टि भास आती है, जब ईश्वर का मन ब्रह्म में लय होजाता है, तब कुल सृष्टि यकायक अभावको प्राप्त होजाती है, और जीव का मन जब सुषुप्ति विषे ईश्वर में लय होजाता है, तब जीव की सृष्टि का पता नहीं लगता है, इस से तुम समझगई होगी कि कुल सृष्टि का आधार मन है, जिस विषय में मन लगजाता है वही दिखाई देता है, और उससे इतर वस्तु का अभाव रहता है, सुनो एक दिन एक राजाकी सवारी निकली, उसके साथ घोड़े हाथी तोप बन्दूक पियादे सवार बड़ी धूमधाम से जाते थे, राह में एक बुड्ढा आदमी चित्त लगाये हुये रेखागणित के एक उपसिद्धान्त को सिद्ध कररहा था, उस को नहीं मालूम हुआ कि कब राजा की सवारी आई, और कब गई । हे मैत्री ! एक वार शुकदेव महाराज राजा जनक के पास ब्रह्मविद्या पाने के निमित्त गये, और उपदेश होचुकने के पीछे उनकी स्थिति ब्रह्मविषे

देखने के लिये राजा जनक ने जनकपुरी में बड़े भारी उत्साह की आज्ञा दी, और उनके अनुसार कहीं कोकिल-वैनी अप्सरायें सुन्दर स्वर ताल से गान करती थीं, कहीं बाजे गाजे बजरहे थे, कहीं नाटकशाला में नटनी कूद फांद कर रही थीं, कहीं विद्वानों का वादविवाद होरहा था, कहीं मल्लों का अखाड़ा जमा हुआ था, ऐसा धूमधाम मचा था कि इन्द्रलोक से देवता भी विमानों पर बैठेहुए गगनमण्डल से ऐसे सुन्दर दृश्यको देखरहे थे, जब भृत्यों ने राजा से आनकर कहा कि आज नगर में चारों ओर आनन्द की वर्षा होरही है, विषयों का उमंग छा गया है, एक २ कौतुक तपस्वियों के मन को हरनेवाला है, इस प्रकार का समाचार पाकर राजा जनक ने शुकदेवजी से कहा कि आप नगर के उत्साह को देख आइये, परन्तु हाथ में एक कटोरा तेल मेरे कहने से लेते जाइये, तेल गिरने न पावे, इसका ख्याल रखियेगा, शुकदेवजी महाराज ने ऐसा ही किया, नगर भर फिरे तेल की तरफ से वृत्ति न हटाई, जब राजा के पास वापिस आये, राजाने पूछा आपने क्या २ देखा, उन्हों ने उत्तर दिया कि सिवाय तेल के और मैंने कुछ न सुना न देखा, यह सुनकर राजा बड़े हँसे, और कहा हे शुकदेव ! आप जन्म से ब्रह्मनिष्ठ हैं, आपका मन सदा ब्रह्मविषे लीन रहता है जैसे आपका मन तेल में लीन था और सिवाय तेल के और कुछ नहीं देखा इसी

प्रकार ज्ञानी की वृत्ति निरन्तर आत्मा में लगी रहती है, और संसारी वस्तु कुछ नहीं दिखाई देती है, हे मैत्री ! जो जगत् कुछ होवे तो दिखाई देवे, यह जेवरी विषे सर्प की तरह भासता है, ऐसे सर्प का नाश केवल जेवरी के ज्ञान से ही हो सक्ता है, और कोई उपाय नहीं है, हे मैत्री ! संसारी सृष्टि वैसे ही भासती है जैसे मनुष्यकृत सृष्टि भासती है, ईश्वरकृत सृष्टि में संकल्प किसी प्रकार का करलेना मनुष्यकृत सृष्टि है, जैसे एकही पुरुष विषे बाबा, नाना, दादा, ससुर, शाला आदिक संकल्प कर लिया जाता है, किसी का वह बाबा लगता है, किसी का नाना, किसी का दादा, किसी का ससुर और किसी का शाला, इसी प्रकार किसी शरीर में ब्राह्मण माना गया है, किसी में क्षत्रिय, किसी में वैश्य और किसी में शूद्र, विचार करने से यह व्यवहार झूठा प्रतीत होता है, इसी प्रकार जीवों के शरीर भी असत् हैं, जहां जीव गमनकर गया, शरीर एक क्षणमात्र भी नहीं ठहरता है, ऐसे अपवित्र, अमंगल, दुर्गन्धि से भरी वस्तु को कौन रखने की इच्छा करना चाहता है; यह न साथ जाता है, और न आता है, प्रारब्ध कर्म के फलभोगार्थ यह जीव स्थूल शरीर को रच लेता है, और जाते समय त्याग देता है, लिङ्ग शरीर अलबत्ता जीव के साथ जाता है, और आता भी है, और जितना ही उसकी वृद्धि नीचे या ऊपर को होती

है, उतनाही जीवको दुःख या सुख होता है, और जब मन जो लिङ्ग शरीर के गणों में मुख्य है, ब्रह्म के साथ आनन्द को पाकर लय होजाता है, तब जीव भी आवागमन से रहित होकर जहां पर है वहीं अपने अधिष्ठान चेतनरूप ही होजाता है, उसी अवस्था को लोग मुक्त कहते हैं, हे मैत्री ! जीव (अन्तःकरणविशिष्ट चेतन, और चेतन का आभास) को मुक्त होनेके लिये पुरुषार्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं है, उसका लिंग शरीर जो पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार का बना है, इस प्रकार शुद्ध करै, नेत्र करके प्रकृति से उत्पन्न हुए मनको हरनेवाली सुन्दरता सांवलता से भरी हुई सुख का उद्दीपन करनेवाली फल फूल वृक्ष पशु पक्षी स्त्री पुरुष को देखै, और मन बुद्धि द्वारा अनुभव करै कि परमात्मा की शक्ति लेकर कैसे २ पदार्थ आश्चर्ययुक्त प्रकृति ने अति सूक्ष्म तेज से बनाये हैं और वह तेज विशेष अंश को प्राप्त होकर ब्रह्माण्ड को भस्म करनेवाला हो सक्ता है, कान करके ईश्वर का गुणानुवाद सुनै, और मन बुद्धि आदि करके विचार करै कि एक अति सूक्ष्म शब्द से इतना बड़ा आकाश पैदा हुआहै जिसमें सारा ब्रह्माण्ड असंख्य तारों सहित लटक रहा है, और उस शब्द में यह विभव है कि अजीवित को जीवित कर देवै, घ्राणेन्द्रिय द्वारा सुगन्धि को भोगै, और मन बुद्धि करके विचार करै कि

ईश्वर की शक्ति ले करके माया ने गन्ध से इतनी बड़ी पृथिवी रची है कि जिसका यह विभव है कि यावत् संसार में भोग्य पदार्थ हैं वे सब पृथिवी से उत्पन्न होते हैं, और वे जीवों के जीवने में प्रथम तत्त्व हैं। जिह्वा द्वारा सब भोग्य पदार्थों का स्वाद लेवे और मन बुद्धि करके अनुभवकरै कि रस करके इतना बड़ाभारी प्रतापवाला समुद्र जल दिखाई दे रहा है, जो सब प्राणियों के जीवन का आधार है, त्वक् इन्द्रिय करके स्पर्श का सुख भोगै, और मन बुद्धि करके विचारकरै कि इसी स्पर्शसे इतना बड़ा बलवान् ब्रह्माण्ड का उड़ा देनेवाला वायु उत्पन्नहुआहै, जो जीवों के जीवनमें मुख्य तत्त्व है, वाणी करके ईश्वर का गुणानुवाद करै और मन बुद्धि करके विचार करै कि संसार के व्यवहार का कारण यही है, और परमार्थ भी इसीके द्वारा सिद्ध होताहै, यदि वाणी न होती तो वेद आदिक कुछ भी न होते, यह अग्नि के रजोगुण का प्रभाव है, हाथ करके शुभ कार्य करता रहै, और दीन दुःखियों को दान देता रहै, और मन बुद्धि से विचार करता रहै, कि वायु के रजोगुण से इसकी उत्पत्ति है, यह भोग्य पदार्थों के एकत्र करने में मुख्य साधन है, पाद इन्द्रिय करके अच्छे २ महात्माओं का दर्शन करै, और उनका सत्सङ्ग करके अपने आत्मा को जानै और मन बुद्धि द्वारा विचार करै कि यह पाद इन्द्रिय आकाश के रजोगुण से उत्पन्न हुआ है, यह

भोग्य पदार्थों के उत्पन्न करने में बड़ा भारी सहायक है, गुदा इन्द्रिय करके मलका त्याग करै और मन, बुद्धि करके विचारकरै कि यह सब इन्द्रियों और अन्तःकरण के सुधार में मुख्य कारण है, और पृथिवी के रजोगुण से उत्पन्न हुआ है, जितना ही यह शुद्ध रहैगा उतनाही अन्तःकरण शुद्ध रहैगा, और लिङ्ग करके मूत्र का त्याग करै और स्वभार्या को रजोधर्म के पश्चात् वीर्यदान देवै, और दान देते समय परमात्मा से या अपने इष्टदेव से प्रार्थना करै कि हे प्रभो ! मेरे वीर्य से जो पुत्र उत्पन्न होवै वह धर्म पर चलनेवाला होवे, और संसार का हित करनेवाला होवै, वह आपका भक्त होवे, यह जल के रजोगुण से उत्पन्न भया है, और छोटी सृष्टि के उत्पन्न करने में ब्रह्मा समझा जाता है, पांचों प्राणों को जो पांचों तत्त्वों के रजोगुण से उत्पन्न भये हैं, आदरपूर्वक पूजै और विचारै कि सब इन्द्रियों का और अन्तःकरण का दारमदार इन्हींपर है, और भोजन करते समय इन को हर एक का नाम लेकर भाग देवै, यथा-प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा। हे मैत्री ! जीवके आने जाने का यह प्राणवाहन है, जब पुरुष का समय निकट आ-जाता है तो यह प्राण पाद से निकलकर ऊपर को जाता है, और ज्यों २ ऊपर को जाताहै त्यों २ नीचे का भाग ठंढा होता जाताहै, जब यह प्राण गुदा के पास पहुँचता

है, तब गुदा का देवता गणेश इसपर सवार होजाता है, और फिर गुदा अपना काम नहीं देती है, जब प्राण लिङ्ग के पास पहुँचता है, तब लिङ्ग विषे स्थित देवता ब्रह्मा उसपर सवार हो जाता है, और तब लिङ्ग इन्द्रिय अपना काम नहीं दे सक्ता है, जब प्राण नाभितक पहुँचता है तब उस स्थान विषे स्थित विष्णु देवता उसपर सवार हो जाता है, और वाणी का निकलना बन्द हो जाता है, जब प्राण हृदयकमल के पास पहुँचता है तब उस जगह का रहनेवाला शिव देवता उसपर सवार होजाता है, और सब ज्ञान इन्द्रियों के देवता और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार झट २ उस पर बैठ जाते हैं जब प्राण देखता है कि सब सवार होगये, तब जो मार्ग कर्मानुसार खुला पाता है, उस मार्ग से निकल जाता है, और जहां जीव जाना चाहता है वहां प्राण पहुँचकर सब देवताओं को उन उनकी जगह पर उतार देता है, और आप पांच रूप होकर सारे शरीर में स्थित होजाता है, और जीव राजगद्दी पर बैठ अपने मन्त्रियों सहित राज करने लगता है.

हे मैत्री! जब पुरुष इस प्रकार विचार करता है तब उसको मालूम होजाता है कि लिङ्ग शरीर जो मेरे साथ अनादि काल से चला आया है, मेरे से कोई वास्ता नहीं रखता है, वह और है, मैं और हूं, उसके नाश से मेरा नाश नहीं, वह शरीर है, मैं शरीरी हूं, जैसे मकान के

गिरजाने से मकान में रहनेवाला अलग होजाता है, वैसेही लिङ्गशरीर के नाश से अविनाशी जीव पृथक् होजाता है, और तवही वह पुरुष मुक्त कहाजाता है । हे मैत्री ! तुम विचार करसक्ती हो कि ब्रह्म कितना शक्तिमान् है, जिसकी इच्छा से उत्पन्न हुये रज, तम, सत्त्व के स्थूल व सूक्ष्म कार्य याने आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि कैसे बलवान् हैं, और वृद्धि को प्राप्त होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आच्छादित कर रक्खा है, जिधर देखो इन्हीं की धूम मची है, परन्तु ज्ञान उदय होते २ ही इनका पता नहीं लगता है, जैसे सूर्य के उदय होतेही तम का पता नहीं लगता है, हे मैत्री ! बताओ अब तुम्हारा क्या हाल है, और तुम कौन हो ?

मैत्री महारानी उत्तर देती हैं—" सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन । " यह कहकर तूष्णीं होती भई और श्रीयाज्ञवल्क्य महाराज भी चुपचाप होते भये दोनों आनन्द में मग्न होगये, गुरु और शिष्य के भाव का अभाव हुआ, देह की स्थिति का पता न लगा, दोनों ी व्यष्टि आत्मा समष्टि आत्मा में एकत्वभाव को प्राप्त होगया, और संवाद की समाप्ति हुई, निर्विकल्प समाधि छागई, सब ओर अमृत की वर्षा होने लगी, अहोभाग्य उनके जो ऐसे दुःख के दूर करनेहारे संवाद को सुनने का अवसर पाते हैं.

जब श्रीमती मैत्रीदेवी और श्रीमहाराज याज्ञवल्क्य निर्विकल्प समाधि से उठे तो अद्भुत दृश्य दिखाई देने लगा, जहां रजोगुण की विभूतियां विराजमान थीं वहांपर अब सतोगुण की विभूतियां शान्तरस को धारण किये हुये एक अलौकिक दृश्य को दिखा रही हैं, चन्द्र सूर्य से निकले हुये प्रकाश ऐसे प्रिय लगते हैं जैसे सन्त महात्माओं के नेत्र से निकले हुये शीतल प्रकाश समीपस्थ दर्शनाभिलाषी पुरुषों के तप्त हृदय को प्रशान्त करते हैं, पृथ्वी ऐसी कोमल हो रही है मानो सुख देनेवाली माता अपने प्रिय लड़कों के पालन करने के लिये आनन्द मंगल करती हुई बहुभांति के भोजन तैयार करने के लिये उदित होरही है, नदी का जल ऐसा धीरे २ बह रहा है, मानो मुनि लोग अरण्य मध्य शिष्यगणों को अपनी शान्त शुद्ध वाणी से उनके हृदयगत मल को बहा रहे हैं, वृक्षादि ऐसे चुपचाप खड़े हैं मानो देवता लोग विष्णु महाराज की स्तुति चित्त लगाकर कर रहे हैं, उस समय की समा को मैं क्या बयान करूं, मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता अगर मैं भी ऐसे पुरुषों के पास बैठा होता। अब याज्ञवल्क्य महाराज मैत्री से पूछते हैं हे मैत्री! इस समाधि में तुमको कुछ मालूम भया या नहीं.

मैत्री—हे भगवन्! मुझको निश्चय होगया कि मैं ब्रह्मरूप हूं, यह सारा प्रपंच जगत् मेरे में फुर रहा है, सुषुप्ति

अवस्था में यह सूक्ष्मरूप से स्थित है, स्वप्न में यही अपने अन्दर दिखाई देने लगता है, और मैं इसका द्रष्टा रहती हूं, और जाग्रत् में यही अपने से बाहर दिखाई देता है, और तब भी मैं उसका द्रष्टा हूं, मेरे में घटना बढ़ना बदलना कुछ भी नहीं है, मैं अखण्ड एकरूप एकरस हूं, घटना, बढ़ना, बदलना मन आदिकों में होता है, मैं अपने को सदा जानती हूं, जब मैं सुषुप्ति में होती हूं, तब भी मैं अपने को जानती हूं, कि मैं हूं क्योंकि सोकर जब उठती हूं तब कहती हूं कि मैं सोई थी, यदि मैं अपने को उस अवस्था में न जानती तो कैसे उठकर कहती कि मैं सोगई थी, यह स्मृतिज्ञान् विना जाने हुये के नहीं होता है, हे भगवन्! मैं अपने स्वरूप में स्थित होगई हूं, कभी च्युत न होऊँगी, महान आश्चर्य है कि ऐसा अद्वितीय मेरा स्वरूप है, और मैं ही सारे जगत् की कर्त्ता और अकर्त्ता दोनों हूं.

याज्ञवल्क्य–हे मैत्री! तुम सत्य कहती हो, जो कुछ देखती हो सत् चित् आनन्द है, इससे इतर और कुछ नहीं है, जब आम्रफल भली प्रकार पकजाता है, और खाया नहीं जाता है, उसमें असंख्य कीड़े विहार करने लगते हैं, उनको भी सुख दुःख मालूम होता है, अगर वे कीड़े पहिले से ही सूक्ष्म स्वरूप करके न रहते, तो फल के पकने पर न प्रतीत होते, और अनगिनातिन कीड़े वृक्षभर में भरे हैं, ऐसा कोई भाग नहीं है, जो कीड़ों

याने जीवों से शून्य हो, सब जीव करके पूर्ण हैं और जीवही चेतन है, इसी प्रकार सारे वनस्पतिभर का हाल जानलेना, जैसे पृथ्वीपर जीव हैं, वैसेही जलमें, वैसेही अग्नि वायु आकाश में, वैसेही जितने लोक लोकान्तर हैं, सब में भरे हैं, चेतन महाराज की धूम मच रही है; जो विचारवान् पुरुष हैं, वे वारंवार उसको दंडवत् करते हैं, जो अविचारवान् हैं, उनको कुछ दीखता नहीं है.

मैत्री—हे स्वामिन् ! अब मुझको यह नाटकशाला बहुत प्रिय लगती है, इसको देखकरके और इसको अपने आधार से शून्य पाकरके और निरवयव निराकार अगोचर आत्मा के आश्रय नाचता हुआ देख करके मैं अति प्रसन्न होती हूं.

याज्ञवल्क्य—हे मैत्री ! आजतक किसी ने ईश्वर की न माया की शक्तियों का हाल जान पाया है, और न कभी कोई जान पावेगा, इस अलौकिक दृश्य को देख करके मग्न हो, आनन्द उठाओ, और जो कोई प्यारा मिले उसको ज्ञान उपदेश कर आनन्दित करो, अब चलो कुटी को चलें.

ओम् हरिः ओम् हरिः ।

निम्नलिखित पुस्तकें रायबहादुर बाबू जालिमसिंह कृत हैं यह देखने योग्य हैं.

ईशावास्य उपनिषद् भाषाटीका सहित	-)॥
केनोपनिषद् भाषाटीका सहित	=)
कठवल्ली उपनिषद् भाषाटीका सहित	।=)
प्रश्नोपनिषद् भाषाटीका सहित	।-)
मुंडक उपनिषद् भाषाटीका सहित	।-)
माण्डूक्योपनिषद् भाषाटीका सहित....	-)॥
तैत्तिरीयोपनिषद् भाषाटीका सहित....	॥)
ऐतरेयोपनिषद् भाषाटीका सहित	≡)
भगवद्गीता भाषाटीका सहित १ भाग	१=)
तथा २ भाग	१)
अष्टावक्रगीता भाषाटीका सहित	१।)
रामगीता भाषाटीका सहित	॥।)
सांख्यकारिकातत्त्वबोधिनी भाषाटीका सहित	।=)
सांख्यतत्त्वसुबोधिनी भाषाटीका सहित	।)